केरल ज्योति

फरवरी 2025

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

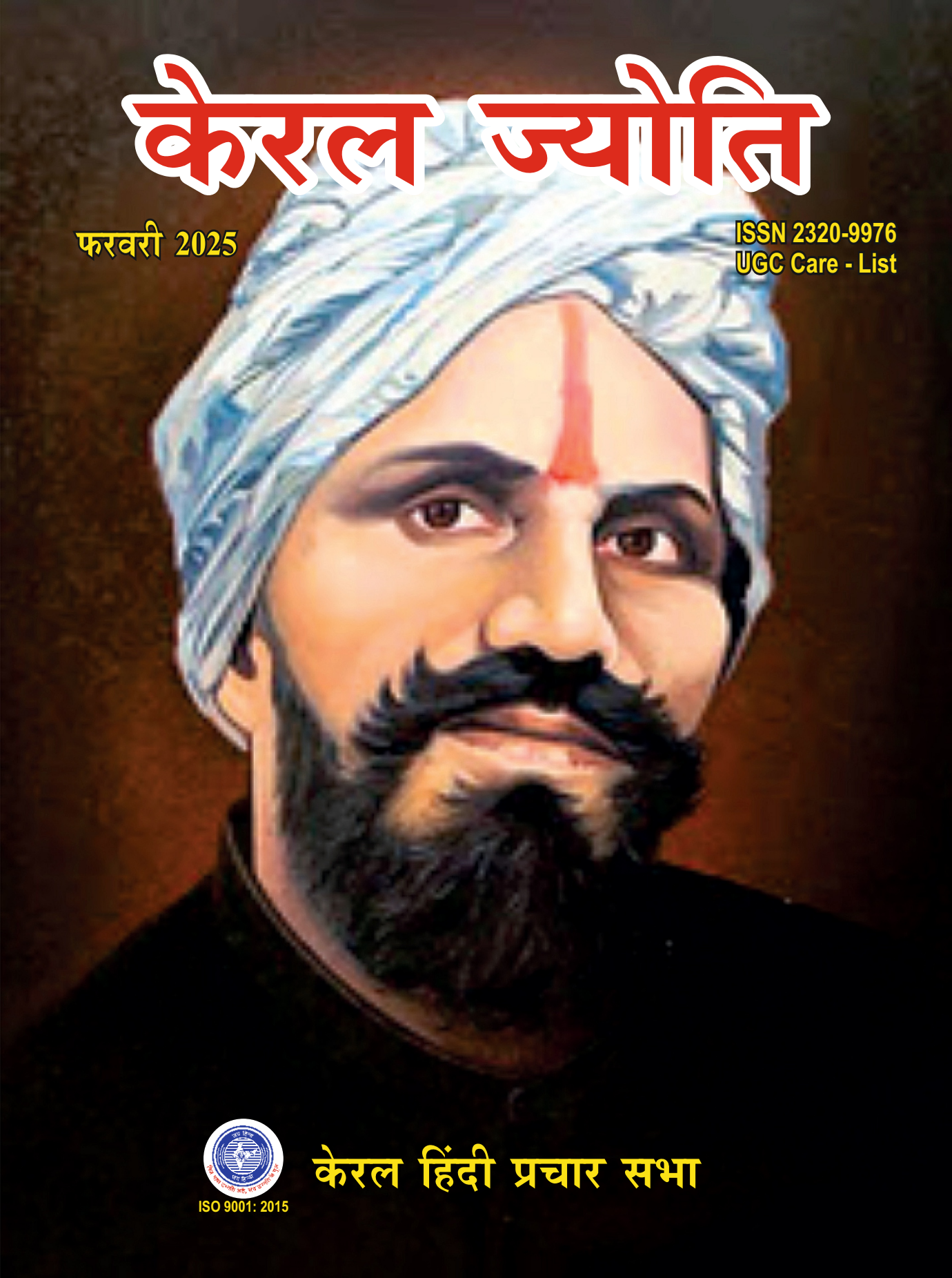

केरल हिंदी प्रचार सभा

ISO 9001: 2015

सभा में आयोजित विश्व हिंदी दिवस समारोह का
उद्घाटन श्री. शशि तरूर एम.पी. कर रहे हैं।

डॉ. सी.जे. प्रसन्नकुमारी के संपादकत्व में रचित
'मलयालम साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक के प्रकाशन का दृश्य।

केरल हिंदी प्रचार सभा एवं यूनियन बैंक के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित
राजभाषा संगोष्ठी का उद्घाटन सभा के मंत्री कर रहे हैं।

पुष्प : 61 दल : 11 अंक: **फरवरी 2025**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

भारत के महान पुत्र सुब्रह्मण्य भारती–**अधिवक्ता (डॉ) मधु बी** 6

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य–**प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 8

समकालीन परिदृश्य और राजेश जोशी की कविता–**डॉ सुमित पी वी** 13

समकालीन परिवेश में जयशंकर प्रसाद का सांस्कृतिक लेखा-जोखा
मधु वासुदेवन 15

घर की चारदीवारी में घुटता नारी मन - उषा प्रियंवदा की 'वापसी' के संदर्भ में–**लीना एस** 19

नहीं चाहिए चाँद (कविता) - **सुबोध श्रीवास्तव** 21

"कथान्तर" में चित्रित नारी जीवन - **रेश्मा एस** 22

शैक्षिक क्षेत्र की सच्चाई की ओर एक नज़र : दीक्षांत उपन्यास के संदर्भ में
राषिदा एन 25

'ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ' में लड़कियों की आत्मा की आवाज़
डॉ ऐडा मानुवेल 28

गिलिगडु : बूढ़ों की पीड़ा का यथार्थ चित्रण–**डॉ रंजी कोशी** 30

हिंदी उपन्यास "कांच के पारे" मनोवैज्ञानिक नजरिए से
डॉ नयनकुमार चमनलाल परमार 33

विज्ञान के क्षेत्र में शिक्षा एवं शिक्षण में डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपकरणों का उपयोग : एक समीक्षा–**औशिमा माथुर** 36

'पंजाब में हिंदी दशा, दिशा एवं चुनौतियाँ'–**डॉ पवन कुमार शर्मा** 39

नरेश सक्सेना की पारिस्थितिक सोच : 'एक वृक्ष भी बचा रहे' कविता के विशेष संदर्भ में–**षिजित के के** 42

स्त्री स्वत्व के विभिन्न आयाम–अनामिका की कविता
डॉ विजयकुमार ए आर 44

प्रश्नोत्तरी–**डॉ.रंजीत रविशैलम** 47

पुराण के अनमोल स्त्री रत्न और पवन करण–स्त्री शतक में स्त्री विमर्श
डॉ इन्दु के वी 48

वैश्वीकरण और समकालीन कविता–**डॉ मिनी ए आर** 51

अल्मा कबूतरी - स्त्री संघर्ष की एक अलग कहानी–**अंजू ई एम** 53

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 56

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा)
मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार 57

मुखचित्र : राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यभारती

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक
स्व. के वासुदेवन पिल्लै
पूर्व समीक्षा समिति
प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर
परामर्श मंडल
डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे
प्रबन्ध संपादक
गोपकुमार एस (अध्यक्ष)
मुख्य संपादक
प्रो डी तंकप्पन नायर
संपादक
डॉ. रंजीत रविशैलम
संपादकीय मंडल
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/- ***आजीवन चंदा : रु. 4000/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 400/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
फरवरी 2025

संपादकीय

राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती

अतुल्य कवि, धीर संपादक, बहुभाषा पंडित, सामाजिक क्रांतिकारी, वेदों का अपार ज्ञानी, नारी स्वातंत्र्य का प्रबल वक्ता एवं भारतीय नवोत्थान का अभिमान स्तंभ स्वर्गीय सुब्रह्मण्य भारती भारत के इतिहास का एक अमर पुरुष है। इन विशेषणों के योग्य उनके अलावा अन्य कोई पुरुष हुआ हो, यह संदेह की बात है। इसी लिए भारत सरकार ने उनका जन्म दिन 11 दिसंबर को भाषा दिवस के रूप में मनाने का जो महान निर्णय लिया है अवश्य ही वह सराहनीय है। क्योंकि तमिल भाषा के माध्यम से भारतीय संस्कृति की महान परंपरा, स्वतंत्रता की अभिवांछा एवं प्रगतिवादी विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति दी थी। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के धीर सेनानी और तमिलनाडु के समाज सुधारकों में अग्रणी होने के अलावा तमिल साहित्य की श्रीवृद्धि में अतुलनीय सेवा की है। उनका साहित्य भाषागत, राज्यगत, धर्मगत संकीर्णताओं के परे है। राष्ट्रीय अखंडता की दिशा में उनकी देन अमूल्य है। सचमुच राष्ट्रकवि के नाम के पद के लिए वे सर्वथा योग्य है। केरल हिंदी प्रचार सभा में जैसे सितंबर 14 को हिंदी दिवस के रूप में और जनवरी 10 को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है, वैसे ही गत वर्ष दिसंबर 11 को भाषा दिवस के रूप में मनाकर सभा ने उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित की और आगे के सालों में भी 11 दिसंबर को राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर भारतीय भाषा दिवस के रूप में मनाया जाएगा। सुब्रह्मण्य भारती ने बालकों के मन में प्रगतिवादी, राष्ट्रीयता भरी और आदर्शपूर्ण भावों को भरने के लिए अनेक मार्गदर्शक कविताओं की रचना करके बालकों को उत्तेजित किया है।

उनका राष्ट्र के प्रति समर्पित कर्म, समाज-सुधार के लिए उनका अथक प्रयास, श्रेष्ठ और उच्च साहित्य की रचना आदि सदियों तक स्मरण किए जायेंगे। ऐसे श्रेष्ठ युग पुरुष के प्रति केरल ज्योति परिवार की नम्र श्रद्धांजलियाँ।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

भारत के महान पुत्र सुब्रह्मण्य भारती

अधिवक्ता (डॉ) मधु बी

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के महान सेनानी, तमिल भाषा के विद्वान, सांस्कृतिक क्षेत्र के अपूर्व व्यक्तित्व और भारतीय संस्कृति के अनन्य पुजारी सुब्रह्मण्य भारती का जन्म 11 दिसंबर 1882 में हुआ। उनके बचपन में ही पिताजी की मृत्यु होने के कारण उनके परिवार को गरीबी की बुरी हालत से उलझना पड़ा। पिताजी की मृत्यु के अनंतर उनकी माताजी ने बड़ी कठिनाई से परिवार को संभाला। अपने बचपन में ही सुब्रह्मण्य भारती ने असामान्य प्रतिभा का परिचय दिया। वे ज्ञानपिपासु थे।

सुब्रह्मण्य भारती के पिताजी की बहन कुप्पम्मा का पति एक सच्चे शिवभक्त थे। वे बाद में अपना जायदाद छोड़कर काशी जाकर वहाँ रहने लगे। पिताजी की मृत्यु के बाद अनाथ बन जानेवाले भारती के संरक्षण की जिम्मेदारी उनकी मामी ने ली। इसी बीच मामाजी की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो गई थी। भारती की शिक्षा-दीक्षा में उनके मामाजी की बड़ी भूमिका थी। काशी में पहुँचनेवाले भारती की भर्ती वहाँ के जयनारायण इंटरमीटियेट कॉलेज में हुई। वहाँ भारती ने अंग्रेज़ी के साथ हिंदी और संस्कृत में दक्षता प्राप्त की। यही नहीं, उनको काशी में अनेक राजनीतिक नेताओं के भाषणों को सुनने का सुयोग भी प्राप्त हुआ।

भारती नियमित रूप से कॉलेज में नहीं जाते थे, बल्कि अपने अधिकाँश समय गंगा के तट पर बैठकर कविता रचना में, प्रकृति का सौंदर्य आस्वादन करने में और अपने मित्रों के साथ नौकाओं में उल्लास यात्रा करने में व्यतीत करते थे। जन्म से ब्राह्मण होने पर भी आचारानुष्ठानों का तिरस्कार करके सब जातियों के साथ घुल-मिलकर रहते थे।

शिक्षा पूर्ति के बाद वे अपने गाँव लौटे। वहाँ पर उनको विदेशी शासन के कुप्रभाव का परिचय मिला। इसी बीच 1902 में भारती ने अपना दांपत्य जीवन शुरू किया। वे चाहते थे कि स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए। काशी से यट्टय्यापुरम वापस आनेवाले भारती को महल में नौकरी मिली। वहाँ के ज़मींदार की सेवा में ही काम मिला था। यद्यपि भारती को अपनी योग्यता के अनुसार उचित काम नहीं मिला था तो भी उनको साहित्य का अधिक अध्ययन करने और विशिष्ट कृतियों को पढ़ने का अच्छा अवसर मिला। उनको अपनी नौकरी के भाग के रूप में जमींदार को अखबारों को पढ़कर सुनाना पड़ता था, देश में होनेवाली गतिविधियों की खबर सुनाना पड़ता था और ज़मींदार की जिज्ञासाओं की पूर्ति करना भी पड़ता था। इस दौरान विश्व साहित्य की प्रमुख कृतियों की अधिक जानकारी प्राप्त करने का अवसर भी मिला।

देश में जो स्वतंत्रता संग्राम हो रहा था उसमें सम्मिलित होने का अवसर भी भारती को मिला। उन्हीं दिनों कविता रचना में आपको अधिक दिलचस्पी होने लगी। देश भक्तिपूर्ण और जोश भरी इन कविताओं

ने जनहृदयों में उथल-पुथल मचा दी। उनकी काव्य रचनाएँ पढ़कर जनहृदयों में गुलामी के विरुद्ध आक्रोश भर उठा। परिणामतः वे ब्रिटिश सरकार की आँखों की किरकिरी बन गए। इसलिए सरकार की ओर से उनको बड़ी यातनाएँ भी सहनी पड़ीं।

भारती ने चाहा कि देश की मुक्ति के पहले अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मुक्ति, भाषा की मुक्ति और भय की मुक्ति अपेक्षित है। इस लक्ष्य को आगे रखकर उन्होंने जनता को जागरित करने का महान प्रयास किया। उन दिनों पुतुच्चेरी फ्रेंच शासन के अधीन में था। इसलिए अपने आशयों का प्रचार करने के लिए और ब्रिटिश पुलिस की आँख चुराकर रहने के लिए उचित स्थान समझने के कारण ही वे पुतुच्चेरी में रहने लगे थे। पुतुच्चेरी में भारती के पडोसी यदुगिरी "इन्डिया" समाचार पत्र के मालिक थे और भारत की मुक्ति के लिए अपने पत्र के माध्यम से महान प्रयास किया था जिससे मिल जनता में आज़ादी का जोश भरा। भारती के जीवन में यदुगिरी का बड़ा प्रभाव पड़ा था जिन्हें वे अपना गुरुतुल्य मानते थे।

भारती जी के जीवन का अधिकांश समय देशप्रेम से प्रेरित साहित्य रचना विशेषकर देशभक्ति गीतों की रचना और राष्ट्रीय संग्राम के साहसिक सेनानी और राष्ट्रीय एकता के प्रचारक के रूप में व्यतीत हुआ था। निरंतर राष्ट्रीय सेवा एवं साहित्य सेवा के कारण उनका स्वास्थ्य शिथिल होने लगा और दस्त की बीमारी से वे काफी कष्ट उठाने लगे। जेल में भी उनको बड़ी यातनायें सहनी पड़ी थीं। स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी होने के कारण देशभक्ति भावना से अभिभूत होनेवाले भारतीजी ने स्वामी

विवेकानंद, बालगंगाधर तिलक, अरविंद घोष आदि महारथियों के भाषणों एवं कृतियों का रूपांतर तमिल में किया। भारती के काव्य सृजन को तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है - भक्ति गीत, देश-भक्ति गीत और अन्य विषयक कविताएँ। इन रचनाओं में अहिंसा मार्ग का उद्घोष करनेवाली "महात्मागाँधी पंचकम्"नामक कृति विशेष रूप से उल्लेखनीय एवं बहुचर्चित है। मलयालम के महाकवि कुमारनाशान, वळ्ळत्तोल् और उळ्ळूर की भाँति उन्होंने अनेक बालकविताएँ रची हैं।

बीमारियों के कारण और अविश्रांत परिश्रम के कारण 38 साल की उम्र में 1921 सितंबर 12 को उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की। यद्यपि वे अपने भौतिक शरीर से मुक्त हुए तथापि वे सदा ही भारतीय जनसहस्रों की स्मृतियों में विराजमान रहेंगे।

मंत्री
केरल हिंदी प्रचार सभा

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

उन्नीसवाँ सर्ग

वर्कला का माहात्म्य

1. सान्निध्य से श्रीजनार्दन मंदिर के वर्कला है परिपावन
पुण्यभूमि जिसका समुद्रीतट है प्रशान्त पर्यटन केंद्र और
अलंकृत है नाना प्रकार के वृक्षों पौधों से जहाँ है एक प्रसिद्ध
और महनीय टीला जिसे दिया नाम गुरुदेव ने शिवगिरि ।

2. यहीं हैं गुरुदेव द्वारा स्थापित शिवमंदिर, विद्या की देवी शारदा का
मंदिर और ब्रह्म विद्या का अध्ययन केन्द्र भी और होने से
यहीं पर गुरुदेव का समाधिस्थल भी बढ़ गया शिवगिरि का
प्राधान्य और आते हैं अनेक पर्यटक और तीर्थयात्री श्रद्धाभाव से।

3. अकेले आये थे गुरुदेव वर्कला में उन्नीस सौ तीन में और
अत्यधिक आकृष्ट हुए वे इस प्रदेश से और उस टीले पर
खड़े होकर देख सकते हैं घाटी और समुद्रीतट के रमणीय दृश्य
और उनके जीवन काल में ही हो गया वर्कला एक पुण्य तीर्थ।

4. चूँकि वर्कला में है वैष्णवों का प्रमुख देव-मंदिर जनार्दन
स्वामी का इसलिए है यह स्थल प्रसिद्ध दक्षिण काशी नाम से
जहाँ पितरों को पिंडदान करने के लिए आते हैं लोग पापनाश
समुद्री तट पर अमावस्या के दिन आषाढ़ महीने में।

5. बीच-बीच में आते थे गुरुदेव अपने अनुयायियों सहित
और लिया निर्णय उन्होंने एक पर्णशाला बनवाकर
वहाँ रहने का और जब रहने लगे वहाँ अकेले ही तो
फैल गया जल्दी ही समाचार सब कहीं उनके वहाँ रहने का।

6. आने लगे लोग वर्कला के आसपास से और दूर दूर से
उनके पास और शनैः शनैः बनता गया उनका आश्रम
सब साधकों के लिए एक आध्यात्मिक केन्द्र जहाँ आयोजित
हुए कई कार्यक्रम और हो गया सारे कार्यक्रमों का मुख्यालय भी।

7. दान में दे दी स्थानीय खेतिहर लोगों ने काफ़ी बड़ी ज़मीन
गुरुदेव के नाम आश्रम के लिए जिसे उन्होंने सरकार से
अपने नाम में पंजीकृत कराया और तदनन्दर ही वहाँ पर
शुरू हुआ एक मठ और एक भव्य शिव मंदिर का निर्माण।

8. औपचारिक समारंभ हुआ सन् उन्नीस सौ सात में
शिवमंदिर के निर्माण का और उन्नीस सौ आठ में श्रावण
महीने के गुरुदेव के जन्म दिवस पर हुआ शिलान्यास शारदा
देवी के मंदिर का भी और होने लगे तेज़ी से दोनों कार्य।

9. निश्चित की गयी थी यह बात सन् उन्नीस सौ दस में ही
कि स्थापना भी हो शारदा देवी की मूर्ति की किन्तु
हो न पायी स्थापना और बाद में गुरुदेव के सान्निध्य में
बनी एक समिति शारदा देवी की प्रतिष्ठा की स्थापना को।

बीसवाँ सर्ग
शारदा देवी की प्रतिष्ठा

1. हुआ आयोजित एस.एन.डी.पी. योगं का त्रिदिवसीय
सम्मेलन शिवगिरि में उन्नीस सौ बारह में और सम्मेलन के
सिलसिले में ही स्थापित हुई शारदा देवी की मूर्ति बड़े उत्सव के
वातावरण में जिसका उल्लेख किया है गुरुदेव के जीवनीकारों ने।

2. करीब करीब एक ही प्रकार का विवरण दिया है सर्वश्री
मुर्कोत्त कुमारन, एम.के सानु एवं अन्य जीवनीकारों ने
कि एक अभूतपूर्व घटना थी त्रिदिवसीय सम्मेलन और
बन गया सुनसान शिवगिरि का प्रदेश एक शहर जैसा।

3. सजाया गया था शारदा मंदिर तक झंड़ों व तोरणों से और
नीचे खेतों में सजाये गये थे उत्सव के मंडप भी जिनके
सामने की भीड़ के आगे था सजे हाथियों का जुलूस और खेतों के
किनारे और मध्य में बने होटल व दुकानें भी सजायी गयी थीं।

4. हुआ था उत्सव के वातावरण में एस.एन.डी.पी. योगं का
वार्षिक सम्मेलन जिसकी अध्यक्षता की थी मितवादी दैनिक
के संपादक और समाज सेवी सी.कृष्णन ने और कहा उन्होंने
कि यह संस्था भविष्य में शृंगेरी जैसी होगी प्रशस्त।

5. भविष्य में आयेंगे लोग अवश्य जिज्ञासु होकर इस मंदिर की
तलाश में पाने को अपने जीवन में ज्ञान, परस्पर स्नेह और
ईश्वर की कृपा और बातचीत के दौरान मूर्कोत्त कुमारन को
बताया गुरुदेव ने कि आगे हो बदलाव मंदिर की प्रणालियों में।

6. गुरुदेव के मत में ज़रूरत नहीं है ज़्यादा खर्च करने की मंदिरों के लिए
और न हो धन का अपव्यय भी उत्सव और आतिशबाजी के लिए
और सुविधा होनी चाहिए मंदिरों में आराम से बैठने की
और भाषण सुनने की यों गुरुदेव ने प्रस्तुत किये नये विचार।

7. ऐसी जगहों पर होने चाहिए अवसर बच्चों को कई
तरह के व्यवसाय सिखाने के और प्राप्त होता है
जो धन जनता से पूजा दक्षिणा आदि के लिए उसका
होना चाहिए उपयोग निर्धन जनों के कल्याणकारी कार्यों में।

8. चूँकि मंदिरों के तालाबों को साफ़-सुथरा बनाये रखना
नहीं है संभव हमेशा इसलिए बनायें तालाबों की जगह
ऐसे स्नानकक्ष जहाँ पानी नल से आकर स्नान करनेवालों के
सिर पर पड़े और तालाबों की जगह बनाये गये ऐसे ही नल।

9 खुले हैं शिवगिरि के मंदिर और विद्याकेंद्र सभी धर्मों के
लोगों के लिए जहाँ पर रहते हैं ब्रह्मचारी एवं संन्यासी
जो करते हैं गुरुदेव-धर्म का प्रचार और करते हैं साथ ही
सेवा का कार्य और देते हैं मार्गनिर्देश जिज्ञासु आगतों को।

10. समय-समय पर होता है यहाँ प्रबंध विद्वान लोगों के
व्याख्यानों का और सुविधायें उपलब्ध हैं अध्येताओं को
पुस्तकालयों में अध्ययन करने व पुस्तकें खरीदने की प्रकाशन
विभाग से और यों बन गया शिवगिरि सचमुच एक विद्याकेंद्र।

11. प्रतिष्ठा के बाद शारदा देवी की निर्देश था गुरुदेव का
कि कुछ लोग ही शिवगिरि में रहें उसकी देखभाल को और
शेष लोग सभी स्थानों में जावें भाषण, प्रचार एवं सेवाकार्य
करने को और लक्ष्य कर उच्चादर्शों को मार्गदर्शन करें समाज का।

13. ब्रह्मविद्या की अधिष्ठात्री देवी है वाग्देवी शारदा और
इस कारण बन गया शिवगिरि ब्रह्मविद्या अध्ययन का
मुख्य-केन्द्र और तांता लग गया ज्ञान-पिपासुओं का
शिवगिरि में जाके ज्ञानार्जन कर जीवन धन्य करने को।

13. मूर्कोत्त कुमारन के मत में अवर्णों के बीच गुरुदेव के
सुधार का दूसरा चरण था शारदा देवी की प्रतिष्ठा
और नहीं थी आराधना की रीतियाँ परंपरागत रूप में
और रोक दी थी नैवेद्य उत्सव और आतिशबाज़ी की प्रथा।

14. शारदा देवी के मंदिर को कहा गया शारदमठ भी जो है
रंगीन शीशों की खिड़कियों वाला और चमकीली ईंटों से
निर्मित अष्टकोण का सुंदर भव्य मंदिर जिस में स्थापित
है कमल पर आसीन शारदा देवी की भव्य दिव्य मूर्ति।

15. प्रतिपादित है मूर्कोत्त कुमारन के संस्मरण में कि गुरुदेव ने
कहा था अब आवश्यक नहीं है पुराने मंदिरों की प्रणाली पर
बहुत पैसा खर्च करके मंदिर बनाने की ओर जो धन मिलता है
पूजा दक्षिणा आदि से उसका उपयोग हो गरीबों की भलाई को।

16. निकल पड़े गुरुदेव शिवगिरि से शारदा देवी की प्रतिष्ठा
के बाद और पहुँचे करुनागप्पल्ली जहाँ रहता था उनका
गृहस्थ शिष्य और वे गये सीधे शिष्य के भवन में और कहा
उन्होंने शिष्य से कि चाहिए हमें बैठने की अपनी जगह।

इक्कीसवाँ सर्ग

आलुवा में अद्वैत आश्रम

1. गुरुदेव की इच्छा थी कि आलुवा प्रदेश में एक आश्रम हो
जिसके लिए इकट्ठा हुआ धन शिष्यों के दान से और
मिल गया पर्याप्त धन ज़मीन खरीदने को आलुवा में
और खरीदी ज़मीन पेरियार नदी के तट के सुंदर भूभाग की।

2. पेरियार नदी तट पर स्थापना की गुरुदेव ने अद्वैत आश्रम
नाम से एक आश्रम की और एक मठ का भी हुआ निर्माण
अद्वैत आश्रम में नहीं है कोई मन्दिर या मूर्ति आराधना को किंतु
होती थीं वहाँ सिर्फ प्रार्थना और चर्चायें आध्यात्मिक विषयक।

3. वहाँ निर्मित हुआ एक स्कूल जहाँ थी सुविधा सवर्ण,अवर्ण
और दलित वर्गों को एक साथ रहकर करने को अध्ययन
स्थापना के साथ अद्वैत आश्रम की होने लगा जनता के बीच
अद्वैत तत्त्वों का त्वरित गति का प्रचार और प्रभाव।

4. दोनों कार्यो से महत्वपूर्ण है साल उन्नीस सौ चौदह और
उसी साल में हुआ था आरंभ संस्कृत स्कूल का और
उसी साल में रचित 'जाति' शीर्षक कविता में गुरुदेव ने
किया स्पष्ट कि एक जाति एक धर्म एक ईश्वर है मानव को।

5. कहा था उन्होंने स्पष्ट कि एक ही नर जाति से निकली
यह नर संतति ऐसे में नर की सिर्फ़ एक जाति है और
तथाकथित ब्राह्मण व चांडाल दोनों निकलते हैं एक जाति से
तो कोई भेद नहीं है मानव के बीच सब में है एक ही आत्मा।

6. गुरुदेव करते हैं उद्‌बोधन सब भारतीयों को कि हमारी
संस्कृति के गौरव वेदों का विभाजन करनेवाले, महाभारत
व पुराणों के रचयिता वेदव्यास जन्मे थे मछुआरिन की कोख से और
इन दृष्टांतों से किया निरूपण गुरुदेवदे ने मानव की एकता का।

7. लिखा है गुरुदेव की जीवनी में अद्वैत आश्रम के अध्यापक
रहे कोट्टुकोयिक्कल वेलायुधन ने कि अभिव्यक्त हुआ था
अद्वैत सिद्धांत ऋषियों के चिरंतन विचार-मंथन से जिसके अनुसार
सभी प्राणियों में व्याप्त है एक ही अनश्वर आत्मचेतना।

8. वही आत्मा भासित हो रही है ब्रह्मांड के रूप में जिसे
साबित करना चाहा गुरुदेव ने व्यावहारिक रूप में और
जनता को सही आत्मज्ञान दिलाने को मार्गदर्शन देते
थे पुनर्मानवीकरण व सामाजिक कल्याण को लक्ष्य कर।

9. स्थापना के बाद अद्वैत आश्रम की श्रीनारायण गुरु रहे
थे वहाँ एक वर्ष तक और हज़ारों लोगों को समझाते रहे
अद्वैत तत्त्व अपने दैनिक प्रबोधनों में और करते थे प्रतिपादन
आध्यात्मिक मानवता का जो होगा भावी मानवीय दर्शन।

10. लिखा है तिरुवनन्तपुरम में स्थित भारतीय विचार केंद्र के
पूर्व निदेशक स्वर्गीय पी.परमेश्वरन ने कि अद्वैत आश्रम का
लक्ष्य केवल ज्ञान देना नहीं अद्वैत के बारे में अपितु उसका
लक्ष्य था उसकी अनुभूति जीवन में कराना भी।

11. अन्य आश्रमों एवं मंदिरों की तरह स्थापना नहीं की
गुरुदेव ने किसी मूर्ति या प्रतीक की और उन्होंने दिया निर्देश
अंतेवासियों को कि हिंदू धर्म से इतर धर्मों को माननेवालों को भी
प्राप्त हो वहाँ रहकर आध्यात्मिक साधना करने को पूरी सुविधा।

12. एक दिन जब संवाद हुआ त्रिच्चूर के धर्म नामक समाचार
पत्र के संपादक और गुरुदेव के बीच मूर्तिपूजा और मंदिरों की
आवश्यकता पर तब कहा संपादक ने कि अब लोगों को मंदिरों की
उतनी आवश्यकता नहीं है तो यों थी गुरुदेव की प्रतिक्रिया।

13. अवश्य ही मंदिरों की आवश्यकता है, लेकिन ध्यान
रखें कि .मंदिर हों साफ़-सुथरे और भक्त जन भी नहाकर
साफ-सुथरे होकर जावें, अच्छी बातों पर संवाद करें और
करें ईश्वर का स्मरण तो होगी लोगों की भलाई अवश्य।

(क्रमशः)

समकालीन परिदृश्य और राजेश जोशी की कविता

डॉ सुमित पी वी

हिंदी में 'समकालीन' शब्द का प्रयोग Contemporary के पर्याय के रूप में किया जाता है। उक्त शब्द का मुख्य रूप से तीन संदर्भों में इस्तेमाल होता है। प्रथम - काल विशेष के संबंध में, दूसरा - व्यक्तिविशेष के काल को सूचित करने, और तीसरा - साहित्य, समाज एवं प्रवृत्ति विशेष की समयावधि को सूचित करने। कुल मिलाकर इन सभी में समय का ही बोध होता है। इस तरह देखा जाए तो समकालीन शब्द एक व्यापक अर्थ को अभिव्यक्तकरता है।

साहित्य के संदर्भ में भी 'समकालीन' शब्द काफी महत्वपूर्ण होता है। प्रत्येक समय में लिखा गया साहित्य उस समय की सच्चाई का आईना होता है। जिसमें हम समाज के चेहरे का प्रतिबिंब साफ देख पाएंगे। समसामयिकता या समकालीनता को आधुनिक होने का पथ या रास्ता कहे जाने में कोई दिक्कत नहीं है। जो रचनाकार अपनी रचनाओं द्वारा समाज से पूरी तरह जुड़ा हुआ होता है वही कालजयी होता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि समसामयिक रहे बिना किसी भी रचनात्मक विधा का कालजयी होना संभव ही नहीं नामुमकिन है। किसी रचना को समसामयिक होने के लिए तत्कालीन समाज के साथ उसका तालमेल बिठाना बेहद जरूरी लगता है। अगर कोई रचनाकार तत्कालीन परिवेश या समाज के साथ अपने आपको या अपनी रचना को नहीं ढाल पा रहा है तो वह 'समकालीन' कहने योग्य नहीं है।

जिस तरह मानव की सोच-विचार को कविता अभिव्यक्तकरती है उतनी अन्य कोई साहित्यिक विधा नहीं कर पाती है। इसीलिए अंग्रेजी कवि विलियम वर्ड्सवर्थ ने कहा - कविता बलवती भावनाओं का सहज उच्छ्लन होती है। यानी कविता और मानव का एक अटूट रिश्ता है। समकालीन कविता की शुरूआत पर अगर ध्यान देंगे तो दो तरह की बातें हमारे सामने उभर आएंगी। कुछ लोग इसे साठोत्तरी कविता मानते हैं और कुछ लोग इसे अस्सी के बाद की कविता मानते हैं। जो भी हो, हमें इस समय की कविताओं में तत्कालीन स्थिति-संदर्भ का आंखों देखा चित्र प्राप्त होता है। अर्थात् समकालीन कविता वह कविता है जिसमें वर्तमान परिदृश्य का बोध तो होता ही है उसके साथ-ही-साथ लोगों की ज़िन्दगी, उनकी लड़ाई, उनका संघर्ष और उनकी बेचैनियों का खुलासा भी होता है। कोई भी रचनाकार अपने समय की परिस्थितियों से अवगत होता है। अपने परिवेश की राजनीति, धर्म, समाज, अर्थ-व्यवस्था एवं साहित्यिक गतिविधियों को वह नजर-अंदाज भी नहीं कर सकता। ये सब बातें उसके लेखन को प्रभावित करती हैं और उसे बार-बार लिखने के लिए उक्साती भी हैं।

सन् 1960 तक नेहरू का युग, मोहग्रस्त काल था। जनता को आने वाले भविष्य के प्रति आश्वस्त कर दिया गया था। उसके बाद हुई लड़ाईयों ने लोगों की प्रतीक्षा को बिगाड़ दिया। देश की आर्थिक स्थिति भी कमजोर होने लगी। कई प्रकार की अनीतियाँ, जातिवाद, वर्गवाद, सांप्रदायिकता का प्रचाप बढ़ने लगा। पहले की तरह स्वतंत्रता के बाद स्थिति बनी रही। इसके अलावा महंगाई व बेरोजगारी ने जनता के जीवन की गति को अवरुद्ध कर दिया। इस परिवेश से प्रेरणा पाकर समकालीन कवि ने अपनी लेखनी चलायी। इस नयी चेतना को मुक्तिबोध 'सच को पूरी ताकत के साथ बाहर लाने का काम' कहते थे।

समकालीन कविता के क्षेत्र में एक साथ अलग-

अलग तरह के कवि कविता लेखन का कार्य कर रहे हैं। ये कवि समाज के सभी हलचलों को अपनी आंखों से बारीकी से देखने तथा उसे पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत करने में कभी हिचकते नहीं हैं। इनमें आलोक धन्वा, मंगलेश डबराल, कुमार विकल, बद्रीनारायण, राजेश जोशी, लीलाधर मंडलोई, अरुण कमल, अनामिका, कात्यायनी, ज्ञानेंद्रपति, निलय उपाध्याय आदि उल्लेखनीय हैं।

एक दिन बोलेंगे पेड़, मिट्टी का चेहरा, धुप घड़ी, नेपथ्य में हँसी और चाँद की वर्तनी जैसे काव्य-संग्रहों को लिखने समकालीन परिवेश में स्त्री के दुख-दर्द को आवाज़ देने वाली रचनाकारों में अनामिका, कात्यायनी, गगन गिल, निर्मला पुत्तुल आदि का नाम महत्वपूर्ण है। प्रभा खेतान की ये पंक्तियाँ स्त्री के अपूर्ण व्यक्तित्व को दर्शाती हैं- "सारी-सारी शाम/सूखते-कपड़ों सी बरामदे में/प्रतीक्षा करूँ तुम्हारे आने की/एक क्षण से/दूसरे क्षण तक।"[8]

कवि को लगता है स्त्री पृथ्वी की तरह है। वह हमेशा और सब कहीं किसी न किसी रूप में दिखाई देती है। गांव में, शहर में, घर पर, घर से बाहर हर कहीं अपनी अलग भूमिका निभाती हुई स्त्री कभी नहीं रुकती, जैसी पृथ्वी। राजेश जोशी के चांद की वर्तनी नामक संग्रह की एक कविता की पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार है- "रैली में चलती स्त्री/जैसे ब्रह्मांड में अनथक चलती पृथ्वी को देखती है/बाहर वह जितनी दिख रही है/उससे उसके सपनों और उसके भीतर मची उथल-पुथल का/अनुमान लगाना नामुमकिन है।"[9]

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि राजेश जोशी की कविताएँ गहरे सामाजिक संबंध रखने वाली होती हैं। वे जीवन के संकट में भी गहरी आस्था को उभारती हैं। उनकी कविताओं में स्थानीय बोली-बानी, मिजाज़ सब कुछ व्याप्त है। उनके रचना संसार में आत्मीयता और लयात्मकता है तथा मनुष्यता को बचाए रखने का एक निरंतर संघर्ष दिखाई देता है। दुनिया के नष्ट होने का खतरा राजेश जोशी को जितना प्रबल दिखाई देता है, उतना ही वे जीवन की संभावनाओं की खोज के लिए बेचैन दिखाई देते हैं।

संदर्भ सूची

1. ऋतुराज की टिप्पणी, धूप घड़ी, प्रथम संस्करण, 2002, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, फ्लैप पर
2. राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, दूसरा संस्करण, 2004, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 52
3. www.amarujala.com/kavya
4. राजेश जोशी, धूप घड़ी, प्रथम संस्करण, 2002, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 111
5. राजेश जोशी, एक कवि की नोट बुक, प्रथम संस्करण, 2004, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.9
6. राजेश जोशी, नेपथ्य में हंसी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1994, पृ. 55
7. https://niramish.tumblr.com/
8. प्रभा खेतान, अपरिचित उजाले, प्रथम संस्करण 2020, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 28
9. राजेश जोशी, चांद की वर्तनी, प्रथम संस्करण, 2006, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.33

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
पषश्शिराजा एनएसएस कॉलेज
मट्टन्नूर, कण्णूर जिला, केरल-670702

समकालीन परिवेश में जयशंकर प्रसाद का सांस्कृतिक लेखा-जोखा

मधु वासुदेवन

ऐतिहासिक दृष्टि से दो विश्वमहायुद्धों के बीच का समय ही जय शंकर प्रसाद का रचनाकाल है। उस ज़माने में विश्व की जनजाति युद्ध की भयानक विभीषिकाओं से पूरी तरह पीड़ित एवं प्रताड़ित होती थी। समाज में ऐसा माहौल उत्पन्न हुआ था कि घोर निराशा की भावना से सारा संसार विवश हो गया था। राजनीतिक स्तर पर देखें तो वह गांधीजी का दौर था। गांधीजी, जरूर शान्तिचिंता के पताका वाहक थे। कहने का तात्पर्य यह है कि जयशंकर प्रसाद की रचनात्मकता, दरअसल युद्ध और शान्ति के बीच पल्लवित हुई है। इसलिए आम तौर पर उनका लेखन इस विशिष्ट मानसिकता का उत्पाद है। उपर्युक्त संघर्ष एवं संयम से समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से ही प्रसाद ने दार्शनिक पद्धतियों का असर लिया था जिससे उनकी समूची सृजन धर्मिता प्रभावित हुई। इस तरह देखा जाये तो प्रसाद का साहित्य आम जनता की चित्तवृत्ति का साहित्य है या उससे तादात्म्य लाने के आग्रह का साहित्य है। इसी परिप्रेक्ष्य में ही प्रसाद की कृतियों के दार्शनिक सौंदर्य का वास्तविक मूल्यांकन किया जा सकता है।

जयशंकर प्रसाद संकल्पात्मक अनुभूति से गुज़रे हुए कलमधारी हैं जिनके साहित्य में सत्य को मूल चारुत्व में ग्रहण करने की असाधारण निपुणता मिलती है। उनका रचना संसार इतना अखंड है कि साहित्यिक संवेदना के समस्त अंग उसमें संग्रहीत था। काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबद्ध आदि के माध्यम से प्रसाद ने जीवन के प्रति प्रवृत्तिपरक दृष्टिकोण पेश किया। उनकेलिए संसार सत्य का स्वरूप था और वह ऐसा एक रमणीय स्थान भी था जहाँ अनुभव के अनगिनत दृश्य दिखाई देते थे। प्रसाद की बहुविध रचनाएँ पाठकवर्ग के अन्तर्मन में सर्जनात्मकता की मनोमोहक मूर्तियां निर्मित करती थीं। मानवीय संबंधों की रागात्मक अनुभूति उनको अपूर्व सुषमा प्रदान करती थी। प्रसाद की कृति में महान असफलताओं तथा महत्त्वपूर्ण श्रेष्ठताओं और महत्तम संभावनाओं का संयोग हुआ है।[1] उन्होंने संन्यास तथा गार्हस्थ्य के बीच सेत बंधन का विशिष्ट कार्य किया। स्वर्ग और नरक के साक्षात्कार के कोमल परिवेश के रूप में वे धरती को संभालते थे। देवता और दानव की जो अपूर्व अवधारणा प्रसाद ने की थी उसको अनुभूतिक यथार्थ की नवीन अभिव्यक्तिमानी जाती थी। वे मायाबाद एवं दुःखवाद का उचित खण्डन करते हुए मानवता की शाश्वत प्रतिष्ठा करना चाहते थे।

प्रसाद अगोचर एवं अमूर्त को मूर्तिमान बनानेवाले अनन्य स्रष्टा थे। जीवन व जगत् से जुडी हुई समस्याएँ उनके विचार की केंद्रीय धुरी रही थीं। इसमें कोई शक नहीं है कि अपने सृजनात्मक जीवन में प्रसाद कभी यथार्थ के विपक्षी नहीं थे। अतएव उनकी जीवन यात्रा सदा यथार्थ के समानांतर रही। प्रसाद के साहित्य की महिमा यह थी कि वह जीवन मूल्यों की तरफ सतर्कता प्रकट करता था। प्रसाद की नज़रिए में प्रेम तथा करुणा दो महत्वपूर्ण जीवन-मूल्य थे जिनका पालन करना हर प्रत्येक लेखक का बुनियादी दायित्व है। वे प्रेम को जीवन के लिए अनिवार्य विधायक तत्व मानते थे। प्रेम-विषयक उनकी धारणा कभी सामती सभ्यता के अनुकूल नहीं थी। प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के महानतम कवि, विचारक एवं अनुपम साहित्य-स्रष्टा के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित थे जिनकी कृतियाँ अपने गुणधर्म के कारण संकल्पनात्मक रस-सिद्धि की धारा से लोक के शुष्क कूलों को हरा-भरा करने का प्रयत्न करती दीखती थीं। जैसे युग-प्रवर्तक कलाकार सैकड़ों वर्ष में एकाध हुआ करते हैं जिनकी कृतियों के अक्षर मंगल दीप बनकर युग-युग तक जन-जन के मानस को तिमिर में प्रभा कीकिरणों के स्पर्श से ज्योतिदान करते हैं।[2] प्रसाद ने गतनुगतिकता का कठिन विरोध करते हुए जड़ मान्यता के स्थान पर सत्ता के अस्तित्व को देखा जो बाह्यलोक से सुदूर भाव लोक पर विचरण करता था।

गंभीर ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण जयशंकर प्रसाद के रचनोन्मुखी व्यक्तित्त्व को सर्वत्र व्यक्त करता था। विशाल भावबोध के साथ-साथ उच्चतर मूल्यों एवं आदर्शों के प्रतिष्ठापन के लिए वे खुद को समर्पित करते थे। उनकी लोकप्रिय रचनाएँ विचारादर्श, मूल्यनिष्ठा, युगचेतना तथा युगदृष्टि के कारण समय के संघर्ष को सदा जीतती थीं। मूल्यधर्मी चरित्र सृष्टि के बहाने वे युग मानस को निरंतर प्रभावित करते थे। उनकी विकासोत्सुक चेतना अपनी

रचनात्मकता को यथावत् विकसित करती आई थी जिससे तमाम छायावादी लेखक लाभान्वित थे। उनकी सहायता से कृतित्व की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चेतना पुष्ट व समृद्ध होते थे। प्रसाद द्वारा निर्मित पात्रों एवं चरित्रों की विशेषता यह थी कि रचयिता के आत्मसचेत व युगधर्मी चेतना का मधुर संयोग उनमें मिलता था। प्रसाद के द्वारा निर्मित पात्र कभी भावना-प्रवण या स्वप्नदर्शी नहीं थे, मानवता की हितकामना उनके क्रिया व्यापार में प्रकट होती थी। क्योंकि उनहोंने नव जागरण की चिंतनधारा से प्रभावित चरित्र सृष्टि के माध्यम से सामान्य जीवन को अर्थवान बनाया।

प्रसाद साहित्य की छानबीन के बाद जो चीज सबसे अधिक प्रबल एव आकर्षक बनी रहती थी, वह उसकी मूल्यपरकता है। उनके साहित्य में अनुभूत मूल्य एवं आदर्श उपर से आरोपित नहीं है, बल्कि वे प्रसाद के जीवन संघर्षों को मार्मिक उपलब्धि थी जिसे अपने चरित्रों को नियंत्रित करनेवाली अक्षुण्ण प्रेरणा मानी जा सकती है। इसके आधार पर नंददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद को नये युग का निर्माता, नव्य दर्शन का उद्भावक सजग द्रष्टा, सर्वश्रेष्ठ शक्तिवादी और प्रानंदवादी कवि माना है। उनके अनुसार 'प्रसादजी कोरी भावुकता में डूबने वाले कवि नहीं थे, वे एक सजग द्रष्टा लक्ष्य और उपाय निरूपक थे।[3] अन्तर्दृष्टि से संचालित प्रतिबद्धता ने उनके साहित्य को विशिष्ट वैचारिक धरातल प्रदान किया जिस पर उनके मूल्य एवंआदर्श खडे हुए थे। क्षमताशून्य होने की संभावना के खिलाफ रचना को सचेतन करने की भावुकतापूर्ण जागृति उनके लेखन को अन्तद्वंद्व से घिरे होने से बचाती थी । प्रसाद की रचना लगातार ऐसी मनःस्थिति का उत्पादन करती थी जो उनकी सृजनात्मकता के उत्कर्ष का परिचय देता था। मल्लिका, मालविका, सेना, चंपा, मधूलिका, सालवती सरीखी नारी- पात्रों की चरित्व रचना के संदर्भ में यह प्रस्ताव सच निकलता था और उनकी अपूर्व सफलता घनात्मक बनकर उभरती थी।

प्रसाद के जुझास्शील पात्र समस्त प्रतिकूलताओं से संघर्षरत होकर उच्चतर लक्ष्य की तरफ अग्रसर होने की प्रवृति दिखाते थे। सभी प्रकार की यंत्रणाओं के ऊपर स्वाभिमान के रक्षार्थ वे वार करते थे। उनका मान व आदर्श मानवीयता की समष्टि चिंता से कभी विच्छिन्न नहीं रहे। जिस आनन्द-भूमि की कल्पना प्रसाद करते थे, वह आनन्द-भूमि प्रवृत्ति मार्ग से होकर वहाँ जाती थी। वे न तो ज्ञान की उपेक्षा करते थे, न क्रिया की और न इच्छा की।[4] दुख-दग्ध को आनंद की अवस्था में अनूदित करने की अनन्य लालसा के कारण प्रसाद मानवीय मूल्यों में गहरी निष्ठा रखते थे, तदनुकूल आचरण के प्रति जागरूकता प्रदर्शित करते थे। अतएव प्रसाद के साहित्य में प्रेम एक उज्ज्वल जीवन-मूल्य के रूप में अवतरित हुआ। उनके रचनात्मक वैशिष्ट्य का यही कारण माना जाता था कि आन्तरिक एवं आत्मिक सौन्दर्य पर आस्थावान होते हए भी उनके लेखन में भौतिक सुषमा का गुण-गान कम नहीं था।

प्रसाद के मूल्यबोध में प्रेम के सारतत्व का आत्मसाक्षात्कार निहित था जो उनके सौन्दर्य-विषयक भोगवादी दृष्टिकोण को प्रकट करता था। हार्दिक सुहानुभूति से निसृत सौन्दर्य निस्रमण उनकी रचना को नई रसिकता प्रदान करता था। उनकी आदर्श की उष्मा से भरपूर नारी पात्र, नारीत्व विषयक आधुनिक विचार के ही प्रतिफलन मानी जाती थीं। नारीमयी प्रकृति प्रसाद-साहित्य में अपना रचनात्मक संदर्भ उभारती थी। वह पाठक के सामने जीने के रहस्य को खोलती थी। क्योंकि प्रसाद मनुष्य के हितकांक्षी लेखक थे जो प्रकृति के समानांतर चलने की प्रेरणा प्रेषित करते थे। उनका विचार था कि प्रकृति के विपक्षी होने से मानव जाति का कोई फायदा नहीं। वे चाहते थे बुद्धि के अतिरेक, तर्कशीलता तथा विज्ञानबोध प्रकृति के के साथ सार्थक समन्वय स्थापित करने में सहायक हो जाय।

प्रसाद उस कोटि के साहित्यकार नहीं थे जो साहित्य को मानव जीवन से विछिन्न तत्व मानने थे। वे मनुष्य के साथ गहरा रिश्ता रखनेवाली विराट् साहित्यिक पद्धति के उपासक थे। इन स्वच्छन्दतावादी कवि ने यथार्थ भूमि पर खड़े होकर जिस सार्वभौमिक साहित्य का निर्माण अपनी कुशल तूलिका से किया वह आनेवाली मानवता को प्रेरणा देता रहता है। उनहोंने किसी परम्परा विशेष का अनुमोदन नहीं किया और उसका व्यक्तित्त्व ऐसा है कि उसका अनुकरण भी सम्भव नहीं।[5]. दरअसल लघु से समग्र की ओर बढ़ने की आकांक्षा को उत्पादित करनेवाले सर्वात्मवादी दर्शन ने प्रसाद की रचनात्मक भूमिका को निर्मित किया। इसलिए प्रसाद के चरित्र भौतिक समृद्धियों की तरफ प्रायः विरागमय दीखते थे।

यद्यपि प्रसाद की प्रकृति कभी कभी अंतर्मुखता

को प्रदर्शित करती थी, फिरभी वे मानवता को उदासीन होने नहीं देते थे। प्रसाद की सृजनात्मकता सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सत्वरक्षा के लिए संकल्प-बद्ध थी। अभिव्यक्ति ही उनका साध्य था। आन्तरिक दृढ़ता, उत्सर्ग तथा समर्पण की मानसिकता से गठित विशिष्ठ व्यक्तित्त्व उनकी रचना को शोभा देती थी। युग-जीवन के साथ अग्रसर होनेवाली संवेदना ऐसे मूल्यों व आदर्शों को अभिव्यक्तकरती थी जो मनुष्यता की नितांत सुख-शांति की कल्पना करती थी। प्रसाद का विराग व्यक्तिगत अनुभूति और सांस्कृतिक अनुभव का अविच्छेद्य यौगिक है- याही उसके अनुराग क्षणों को, विलास-वृत्ति को भी सौंदर्य अर्थ और एक पवित्र प्रभावमयी गरिमा देता है।[6]. दार्शनिकता की उपस्थिति एवं भावबोध की विद्यमानता ऐसे दो अन्य संघटक थे, जो प्रसाद के रचनालोक को मूल्यादर्श से आलोकित करते थे।

प्रसाद की स्वच्छंदतावादी मानसिकता उनके मौलिक जीवन-विवेक से अनुशासित होती थी। उन्होंने स्वाधीनता की परिकल्पना को यथार्थपरक आदर्श के रूप में स्वीकार किया। सांस्कृतिक अस्मिता बोध से अनुप्राणित होने के कारण प्रसाद की रचनाधर्मिता विशिष्ट नैतिक दृष्टिकोण को अपनाती थी जो उनके साहित्य का अर्थ और अभिप्राय को पारिभाषित करते थे। उदात्त आशय की संलग्नता सहित व्यापक लक्ष्य की उपस्थिति उनके लेखन को सहज मानवीय, दार्शनिक निष्पत्ति से प्रकाशित करती थीं। जाहिर है, पात्रों की विराट रिक्तता को दार्शनिक सुषमा प्रदान करने में और कल्पनात्मक कंचन से भर देने में प्रसाद निश्चिंत सफल हुए। उन्होंने ऐसे रागात्मक क्षोभ का चित्रण किया जो हिन्दी साहित्य के लिए नया अनुभव प्रदान किया। अपनी गहन काव्यात्मक धारणा को नाटकीय मुद्रा में स्थापित करने की प्रवृत्ति प्रसाद की साहित्यिक रचना को विशेष उन्माद दे देती थी। उनके विचारों का मूल स्रोत तो निश्चित ही मानव का आदर्श रूप है, जिसे निरंतर ध्यान में रखते हुए ही वे व्यक्ति समाज, मानव और विश्व के सुंदर और कल्याणकारी रूप को प्रस्तुत कर सकने में समर्थ हुए हैं।[7] वस्तुतः प्रसाद ने धार्मिक विधि-निषेध के खिलाफ मनुष्य के अस्मिता-बोध और जीवन विवेक को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का अखंड उन्मेष दिखाया।

लीक से हटकर प्रसाद की नाट्य रचनाएँ पुरुष-प्रधान समाज द्वारा निर्मित सड़े-गले विधि-विधानों को उचित चुनौती देती थीं। प्रसाद ने घुलनशीलता को उनके पात्रों की चारित्रिक विशेषता के रूप में अवतरित करने की चेष्टा की। वे नारीत्व विषयक भाववाद को ध्वस्त करने वाली विद्युत शिखा के रूप में अपनी नारी पात्रों का गठन करते थे। सर्जनात्मक दायित्व का निर्वाह करने की जो विशेष जागृति, दृढ़ता एवं तेजस्विता उनकी पात्रयोजना में दिखाई देती थी वह सबको हतप्रभ कर देती थी। विचार का क्रांतिकारीपन जगह-जगह पर उनकी रचना में आलोक बिखेरती थी। जिजीविषा की प्रबलता से अलंकृत कृतियों से उनका दृढ़ विश्वास यत्र तत्र प्रकाशित होता था। प्रसाद की साहित्यिक प्रस्तुति से नये आकर्षण को जोड देने केलिए उनका नैतिक बोध सर्वथा सहायक रहा। प्रसाद ने अपनी रचना में प्रकृति का जैसा उपयोग किया, वैसा हिंदी के किसी आधुनिक कवि में नहीं देखा जाता है।[8] उनका साहित्य उतना धन्य था कि वस्तुजगत के वैचारिक संघर्ष को निरु पित करने की अपार क्षमता उसमें मौजूद था। व्यक्तिपरक भावनाओं के उतर - चढ़ाव या घात - प्रतिघात को अभिव्यंजित करनेवाली अनेक कहानियाँ उन्होंने रची थीं जिनमें मूल्यविघटन के विविध संदर्भ दर्शनीय थे। वे युगीन आदर्शों के मिजाज को कलात्मक संयम के साथ अर्थापित करते थे।

प्रसाद ने इतिहास एवं समाज के पारस्परिक अन्तविरोधों की लय को उनके साहित्य की बुनियादी विशेषता मानी। वे बोध एवं विचार के स्तर पर औदात्य की सृष्टि करने की तीव्र अभिलाषा रखते थे। नतीजतन उनकी रचना-यात्रा मनुष्य से मानवता की ओर उन्मुख हो जाती थी। प्रसाद की मानवीय चेतना का क्षेत्र इतना विकसित था कि विविधतामूलक साहित्य-सृष्टि उसमें संदर्भित था। गहरे स्वातंत्र्य बोध से अनुप्राणित एवं अनुशासित जनतांत्रिक विचारों की सहज प्रतिक्रिया ने उनके साहित्य को अपूर्व भंगिमा से अलंकृत किया। भारतीय महाजाति और उसकी संस्कृतिक अस्मिता को लेकर प्रसाद गौरवान्वित होते थे। अपनी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विरासत को बनाये रखने का नितांत प्रयास सही उनकी पहचान थी।

प्रसाद का साहित्य भारतीय चितन-धारा के क्रमिक विकास का परिचायक था। उसके नैसर्गिक पारिणाम के प्रति उनमें पर्याप्त जागरूकता दिखाई देती थी। उनकी रचनाशीलता के तीन आधारभूत तत्व होते हैं, आदर्श की प्रतिष्ठा, चित्रवृत्ति-निरूपण तथा यथार्थ की अभिव्यक्ति। वे सत्य के मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय उद्घाटन में विशेष तत्परता दिखाते थे।

इसलिए उनका वेदना निरुपण वैयक्तिक न होकर सामाजिक संघर्ष से संश्लिष्ट था।उनकी पीड़ा का स्वरूप नकारात्मक न बनकर सकर्मक पीड़ा के रूप में ढला था। प्रसाद की सांस्कृतिक चेतना को ही उनकी साहित्यिक चेतना मानते थे।[9] उनकी मूल्यदृष्टि अटूट आस्था के संयोजन में क्रियाशील रही थी। जीवन-पथ पर कर्मशील होने की महान प्रेरणा उनके लेखन को सचेष्ट करती थी। इसी कारण से उसमें मानवीय चेतना के उज्ज्वल एवं उदात्त अनुभव लक्षित होते थे।

प्रवृत्तिपरक दृष्टि से प्रसाद, प्रेमचंद एवं निराला की कडी को जोड देनेवाले लेखक हैं। वे दरअसल तदयुगीन साहित्यिक यथार्थ के सही वाहक व समर्थक थे। यथार्थ के प्रति उनकी एक अलग दृष्टि थी। प्रसाद कभी यथार्थ का तिरस्कार नहीं करते थे। उनका यथार्थ मूलतः उस स्तर का था जिसको किसी भी शक्ल या रूप-रंगत में मोड़ा जा सकता था। सर्जनात्मक संघर्ष से अभिप्रेरित प्रसाद हमेशा आंतरिक रिक्तता की समस्या को खोजते थे। उन्होंने छायावादी मनोभूमि में ज्ञानात्मक समरसता को संचारने की कठिन कोशिश की। प्रसाद की क्लासिकी कृति 'कामायनी' ज्ञान, कर्म एवं इच्छा के समंजस्य को स्थापित करने की गहरी सोच थी। इसलिए उनकी कहानियाँ अतीत के रमणीय एवं प्राणवान चित्रों को पुनर्निमित करने के लिए अत्यंत उत्साह प्रकट करती थीं। उनमें उदात्त जीवन-सदेश के संजित स्वरूप मौजूद थे। साथ ही सामाजिक एवं धार्मिक विकृतियों की शल्य-क्रिया भी देखने को मिलती थी। साहित्य समाज में उनकी प्रसंगिकता गहन आस्था के दस्तावेज के रूप में बनी रहती है।

प्रसाद की रचनात्मक पृष्ठभूमि वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक व्याप्त पड़ी है। धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक बोध से ओतप्रोत विचार - परंपरा उनकी रचना को अलग अस्मिता देती है। उसमें उच्च मानवीय आदर्श को स्थापित करने का सृजनात्मक मोह प्रस्फुटित होता है। अचल संकल्पमयता एवं भाव-सम्पदा से ओतप्रोत रचनाशीलता उनके वाङ्मय की मूल चेतना मानी जाती है। प्रसाद मानते थे, सब भावनाएं साधरणत? हमारे विचारों की संकीर्णता से और प्रधानतः अपनी स्वरूप विस्मृति से उत्पन्न है।[10] उनके कृतिबोध ने इस परम तथ्य को साबित किया कि मूल्यवान चिंतन-प्रत्यय को ग्रहण करता था। उनकी अन्तर्राष्ट्रीयता तथा विश्वमानवता को स्पर्श करनेवाली रचनाधर्मिता ऐसे विशेष सद्भाव की कल्पना करती थी जिससे पूरा हिन्दी जगत आलोकित हो उठता है। विचारगत व आचरणगत अनन्यता और लोकोन्मुखता का भाव उनके साहित्य को नवीन सौन्दर्य सहित उभारने की सहायता देते हैं। अपने संपूर्ण वैचारिक द्वन्द्वों तथा नमाम मानसिक संघर्षों के बावजूद प्रसाद की साहित्यिक उपलब्धियाँ एक विराट् लक्ष्य के लिए समर्पित दीख पड़ती हैं। चित्रात्मकता, नाटकीयता, संशिलष्टता जैसे संरचनात्मक तत्वों की उपस्थिति प्रसाद की रचना को अनन्य दृश्यानंद प्रदान करती है। आजकल हिन्दी साहित्य के विस्तृत इतिहास में जयशंकर प्रसाद के वाङ्मय की पहचान उन असाधारण कवि के रूप में है जिनकी प्रतिभा ज्ञानलोक की आनन्दमयी रश्मियों से सदा मंडित होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रमेश कुंतल मेघ, कामायनी की मनस्सौंदर्यात्मक सामाजिक भूमिका, पृ.41
2. रामनाथ सुमन, कवि प्रसाद की काव्य-साधना, पृ.24-25
3. नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद', पृ.55
4. डॉ. हरिचरण शर्मा, कामायनी विमर्श, पृ.102
5. प्रेमशंकर, प्रसाद का काव्य, पृ.47
6. रमेशचंद्र शाह, विश्वविद्यालयों का कविःप्रसाद, आलोचना के अप्रैल-जून 1966, पृ.83
7. रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसाद-वस्तु और कला, पृ.113
8. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिंदी का सामयिक साहित्य, पृ.175
9. सत्यप्रकाश मिश्र, प्राक्कथन, प्रसाद ग्रन्थावली खंड चार, पृ.19
10. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ.8

प्रोफसर, हिंदी विभाग
महाराजास कॉलेज, एऱणाकुलम - 682 011

घर की चारदीवारी में घुटता नारी मन - उषा प्रियंवदा की 'वापसी' के संदर्भ में

लीना एस

सारांशः आधुनिक हिंदी साहित्य की लेखिकाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय प्रवासी लेखिका श्रीमती उषा प्रियंवदा ने कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाया है। 'संपूर्ण कहानियाँ' की भूमिका में उषा जी लिखती है, 'मैं वही लिखती हूँ, जिससे मैं परिचित हूँ - यानी भारत और विदेश का परिवेश। मेरे चारों ओर की घटनाएँ लोग उनके जीवन की उलझनें और समस्याएँ हर समय मेरी सृजनता को प्रभावित करती रहती है। "उन सबके सम्मिश्रण से पात्र एक आकार लेकर मानस को ऐसा जकड़ लेते हैं कि उन्हें नाम , मानव प्रवृत्तियाँ देकर विभिन्न घटनाओं को पिरोकर एक कहानी अपने आप बन जाती है, बस उसे लिखने का काम मेरा होता है।"[1] उनकी कहानियों में संबंधों के आयाम और द्वंद्व से युक्त मध्यवर्गीय भारतीय जीवन की सचाई का स्वर मुखरित होता है। अनुभव और कल्पना के सहमेल से यथार्थ की पुनः सृष्टि करने में वे सिद्धहस्त हैं। इसका सर्वोत्तम नमूना है 'वापसी'। 'वापसी' केवल उषा प्रियंवदा की प्रतिनिधि कहानी नहीं, उसे हिंदी कहानी की प्रतिनिधि कहानी स्वीकार किया जाता है। 'नई कहानियाँ' में प्रकाशित यह रचना सुप्रसिद्ध आलोचक डॉक्टर नामवर सिंह द्वारा उस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी गई।"[2]

बीज शब्द - चारदीवारी, घुटन, वापसी, संदर्भ

प्रस्तावना - आधुनिक युग में टूटे हुए संयुक्त परिवार की व्यवस्था वापसी में उभर कर आई है। सेवानिवृत्त गजाधर बाबू अपने ही परिवार में किस तरह फालतू हो जाता है, इसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कहानी में हुआ है। गजाधर बाबू रेलवे में पैंतीस साल की नौकरी से सेवानिवृत्त होकर अपने घर लौट आते हैं, अपनी बीवी और बच्चों के बीच। बड़े बेटे और बड़ी बेटी की शादी हो गई है। छोटा बेटा और बेटी कॉलेज में पढ़ते हैं। गजाधर बाबू को विश्वास था कि उनका घर लौटना उनके लिए और परिवारवालों के लिए सुखद अनुभव होगा। लेकिन ऐसा नहीं होता है। उनकी अनुपस्थिति में परिवारवालों में, खासकर बच्चों में जो बदलाव आया है, वह उनके लिए असहनीय था। उनके लिए गजाधर बाबू परिवार का एक सदस्य नहीं, बल्कि एक अवांछित मेहमान रह गया है । दो-तीन दिन में ही वे इस यथार्थता से वाकिफ हो जाते हैं कि परिवार में उनका अपना स्थान नहीं है। वे केवल धनोपार्जन का एक उपाय मात्र रह गए हैं। पत्नी और बच्चों के बर्ताव से आहत होकर गजाधर बाबू फिर से नौकरी करने दूर चला जाता है। परिवार द्वारा अपेक्षित गजाधर बाबू के चित्र के साथ-साथ उसकी लाचार पत्नी का रूप भी पाठकों के मन को झकझोर देता है। उपेक्षा के शिकार गजाधर बाबू की चर्चा तो चलती रहती है , लेकिन उपेक्षिता उनकी पत्नी के बारे में तो विचार विमर्श करना भी जरूरी है।

प्रस्तुत कहानी में जो परिवार है, उसे परिवार में एक दूसरे के प्रति आत्मीयता का बिल्कुल अभाव है। सभी अपने-अपने सुख के लिए कार्य करता है। एक दूसरे के प्रति सहानुभूति किसी में नजर नहीं आती। गजाधर बाबू तो बरसों से दो बेटों दो बेटियों और पत्नी को छोड़कर रेलवे क्वार्टर के कमरे में रहते आए हैं। उन्हें अपने बच्चों की पढ़ाई - लिखाई का कोई झंझट नहीं था। उनकी पत्नी तो जीवन भर अपने परिवार की सेवा करती आई है। एक बेटे और एक बेटी की शादी हो गई है। घर में बहू है, नौजवान बेटा नरेंद्र और बेटी बासंती है, फिर भी घरेलू काम में माँ का हाथ बंटानेवाला कोई नहीं है। सारा काम माँ के कंधों पर डालकर सब हँसी - खुशी में जीवन बिताते हैं । उन्हें न अपनी माँ की चिंता है, न अपने पिता की। माँ अपने ही घर में नौकरानी बनकर रह गई है। वर्षों की इस यातना ने उसे कठोर बना दिया है। पति की वापसी उनके मन में खुशी का बसंत नहीं लाती। पत्नी के रूखेपन से गजाधर बाबू का मन दुखी होता है। पत्नी के स्नेहपूर्ण व्यवहार की यादें उसके हृदय में अब भी हैं। " दोपहर में गर्मी होने पर

भी दो बजे तक आग जलाई रहती और स्टेशन से वापस आने पर गरम-गरम रोटियाँ सेंकतीं। उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा - सा कुछ और थाली में परोस देती और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह थके - हारे बाहर से आते तो उनकी आहट पा वह रसोई के द्वार पर निकल आती और उनकी सलज्ज आंखें मुस्करा उठती।"[3]

घर की चार दिवारी में घुटती पत्नी कभी-कभी उत्तेजित होकर सालों से मन में भर - भर कर रखी कुंठा को शिकायत के रूप में प्रकट करती है। "सारा दिन इसी खिच - खिच में निकल जाता है । इसी गृहस्थी का धंधा पीटते - पीटते उमर बीत गई। कोई ज़रा हाथ भी नहीं बंटाता।"[4] उसके इन वाक्यों में पति के प्रति रूखेपन का जवाब छिपा है , जिसे समझने में पति असमर्थ हो जाता है। यही गजाधर बाबू का हार है। उसे घर की चार दिवारी में घुटती नारी की मानसिक व्यथा का ज़रा भी परवाह नहीं। वह यह नहीं सोचता कि पत्नी क्यों ऐसा बर्ताव कर रही है? उसकी शिकायत की जड़ को पहचाने बिना गजाधर बाबू घर में जो कार्य करता है, वही दूसरों के मन को चोट पहुँचाती है। बेटी का बनाया खाना पसंद न आने पर गजाधर बाबू ने पत्नी से कहा - "इतनी बड़ी लड़की हो गई है और उसे खाना बनाने तक का शउर नहीं आया।"[5] यहाँ पर भी पत्नी को ही पति दोषी ठहरता है। यही विडंबना है। घर में न नरेंद्र काम करना चाहता है, न बेटी बासंती, न बहू। घर का सारा काम करते-करते पत्नी की हालत देख गजाधर भी अस्वस्थ हो सोचने लगता है - "यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श , जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने संपूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उसके मन और प्राणों के लिए नितांत अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी - सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था। चेहरा श्रीहीन और रूखा था।"[6]

गजाधर बाबू और उनकी पत्नी में मूल्यगत भेद नहीं है। जिसप्रकार बच्चों का व्यवहार गजाधर बाबू को अच्छा नहीं लगता है, उसीप्रकार उनकी पत्नी भी उनके व्यवहार को उचित नहीं मानती है। लेकिन पत्नी अपनी असंतुष्टि को बच्चों से नहीं, बड़बड़ाहट और शिकायत के रूप में अपने पति से प्रकट करती है। जब गजाधर बाबू ने कहा कि आगे हाथ में पैसा कम रहेगा और खर्च कुछ कम होना चाहिए तो पत्नी ने कहा - "सभी खर्च तो वाजिब - वाजिब है। किसका पेट काटूँ? यही जोड़ - गांठ करते-करते बूढी हो गई, न मन का पहना न ओढ़ा।"[7] पत्नी की शिकायत से यह ज्यादा बाबू बच्चों के जीवन में नियंत्रण लाने की कोशिश करता है और उसमें असमर्थ हो जाता है। गजाधर बाबू वापस जाने के बारे में सोचने लगता है। एक प्रकार से वह ज़िंदगी से दूर भगाने की कोशिश करता है। फिर से नौकरी करने जाते समय गजाधर बाबू ने उसे अपने साथ चलने की बात की तो पत्नी ने सकपकाकर कहा - "मैं चलूंगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की.....।"[8] उसके इस जवाब में ही निहित है उसका व्यक्तित्व और चरित्र। जीवन ने ही उसमें रूखापन भर दिया है। पत्नी तो हमेशा यथार्थता के धरातल पर जीवन बितानेवाली है। 'वापसी' के माध्यम से एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया है, जो केवल पति को ही नहीं चाहती, बल्कि पति के साथ-साथ बेटे-बेटियों, बहू - पोतों से भी बेहद प्यार करती है। परिवार को एक संघ रखना चाहती है। उसमें सेवा भाव कूट-कूट भरा हुआ है। उसे भरे पूरे परिवार में ही रहना पसंद है। इसीलिए पति के साथ वह नहीं जाती।"[9]

कहानी के अंत में गजाधर बाबू के चले जाने पर उनकी पत्नी अपने पुत्र को आदेश देती है - "अरे नरेंद्र! बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। इसमें चलने तक की जगह नहीं है।"[10] यहाँ चारपाई स्वयं गजाधर बाबू के निजी व्यक्तित्व या अस्तित्व का ही प्रतीक बन जाती है। एक प्रकार से गृहस्वामिनी उस अनचाही चारपाई को नहीं, बल्कि अनचाहे पति को ही अपने घर से जल्दी निकाल देने के लिए बेचैन हो रही है। यही प्रस्तुत कहानी का कारुणिक अंत कहा जा सकता है। पत्नी चाहकर भी पति से सहानुभूति पूर्ण व्यवहार नहीं कर पाती। उसे वर्षों से मिल रहे तीखे अनुभव उपेक्षा की भावना आदि ने इतना कठोर बना दिया कि पति के वापस जाने से उसके दिल में ज़रा भी दुख नहीं होता। वह बिना पति के जीवन बिताने की आदी हो गई है। अपने बच्चों के पालन पोषण करने में आर्थिक सहायता तो उसे अपने पति से जरूर मिली, लेकिन उससे बढ़कर पति की ओर से कुछ नहीं मिला। वह अकेली चार बच्चों का

पालन पोषण करती रही। उसे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए पति से ना कोई सहारा मिला और ना ही अपने बच्चों से।

निष्कर्ष : उषा प्रियंवदा जी की प्रस्तुत कहानी की माँ अपनी ज़िंदगी में परंपरागत मूल्यों को कसकर पकड़ती, अपने उत्तरदायित्व को निभाती है। स्त्री जीवन की पीड़ा को उजागर करनेवाली कहानी है 'वापसी'। 'वापसी' की पत्नी के मन में अपने बच्चों के प्रति जो उत्तरदायित्व की भावना है, उससे प्रेरणा पाकर वह घरेलू कामकाज में डूब जाती है। वह अपने कर्तव्यों से मुंह मोड़ना नहीं चाहती। अगर वह चाहती तो अपने पति के साथ जा सकती थी, लेकिन वह ऐसा नहीं करती है। घर की चारदीवारी के अंदर ही उसका संसार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दस प्रतिनिधि कहानियाँ - उषा प्रियंवदा , संपादक - सुशील सिद्धार्थ, किताब घर प्रकाशन, संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या : 5
2. वही, पृष्ठ संख्या : 6
3. वही, पृष्ठ संख्या : 22
4. वही, पृष्ठ संख्या : 23
5. वही, पृष्ठ संख्या : 26
6. वही, पृष्ठ संख्या : 25
7. वही, पृष्ठ संख्या : 25
8. वही, पृष्ठ संख्या : 29
9. डा. सुकुमार भंडारे 'हिंदी कहानी - आदि से आज तक' पृष्ठ संख्या : 120
10. दस प्रतिनिधि कहानियाँ - उषा प्रियंवदा, संपादक - सुशील सिद्धार्थ, पृष्ठ संख्या : 30

शोध निर्देशकः डॉ. ज्योति शर्मा

शोधार्थी

यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी, जयपुर

कविता

नहीं चाहिए चाँद

सुबोध श्रीवास्तव

मुझे
नहीं चाहिए चांद /और
न ही तमन्ना है कि
सूरज
कैद हो मेरी मुट्ठी में
हालांकि
मुझे भाता है
दोनों का ही स्वरूपा
सचमुत
आकाश की विशालता भी
मुग्ध करती है
लेकिन
तीनों का एकाकीपन
अक्सर
बहुत खलता है
शायद इसीलिए
मैंने कभी नहीं चाहा कि
हो सकूँ
चाँद/सूरज और आकाश जैसा
क्योंकि
मैं घुलना चाहता हूँ
खेतों की सोंधी माटी में
गतिशील रहना चाहता हूँ
किसान के हल में,
खिलखिलाना चाहता हूँ
दुनिया से अनजान
खेलते बच्चों के साथ,
हाँ, मैं चहचहाना चाहता हूँ
साँझ ढले/घर लौटते
पंछियों के संग-संग
चाहतहै मेरी
कि बस जाऊँ /वहाँ-वहाँ
जहाँ -
साँस लेती है ज़िंदगी
और/यह तभी संभव बा
जबकि
मेरे भीतर ज़िंदा रहे
एक आम आदमी।

कानपुर (उप्र)-208 001

"कथान्तर" में चित्रित नारी जीवन

रेश्मा एस

समकालीन साहित्यकारों में उषा जी का स्थान प्रथम श्रेणी में आता है। हिंदी साहित्य क्षेत्र में उषा जी का प्रवेश आठवें दशक में हुआ। उषा जी ने अपने जीवन की विषम स्थितियों को चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। आपने एक लेखिका के रूप में अपने आपको स्थापित करने के लिए काफी संघर्ष किया है। उषा यादव का 25 जन्म जुलाई 1948 उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में हुआ। पिता श्री चंद्रपाल सिंह बाल साहित्य की सामर्थ रचनाकार एवं पेशे से वकील थे। वे साहित्य के क्षेत्र में 'मयंक' नाम से जाना जाता था। माता श्रीमती प्रेमवती यादव है। उनकी लेखनी में उपन्यास, कविता, नाटक, कहानी, बाल साहित्य आदि लेखन का विषय बनाया है। समाज के हर क्षेत्र चाहे वह गरीब हो या अमीर चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित स्त्री हो या पुरुष हर विषय पर उन्होंने लेखनी चलाई हैं। साथ ही उन्होंने सामाजिक समस्या, धार्मिक समस्या, आर्थिक समस्या, तंत्र- मंत्र का प्रयोग जैसे विषयों पर लेखनी चलाई है। सामाजिक विसंगतियों को देखकर उषा यादव के मन में कहीं गहरी आहत होती है। इसलिए उस भयानक दृश्य को स्पायित करने के लिए और समाज को सही दिशा देने के लिए उनकी रचना स्वयं को उनकी कलम से लिखवाती है।

प्राचीनकाल से लेकर आज तक के नारी जीवन को देखने पर उसमें कई प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन काल में नारियों का जीवन उतना शोभदायक नहीं था। परंपरा, रूढ़ियों और धार्मिक अन्यायों से जकड़े समाज प्राचीन काल की नारियों को मानव न मानकर केवल उपभोग की वस्तु माना था। नारी को उस समाज में स्वतंत्र व्यक्तित्व भी नहीं दिया गया था। उस समय नारी को पुरुषों के हाथ की कठपुतली बनायी जाती थी। लेकिन भारतीय धर्म संहिता नारी को उचित स्थान और आदर दिया गया है। स्वतन्त्र्योत्तर भारत में नारी जीवन को बहत्तर बनाने का प्रयास किया गया है। लेकिन दुख की बात यह है कि पुरुष के समान नारी जीवन में आगे बढ़ाने की कोशिशों के बावजूद भी उनका शोषण और दबाव की प्रवृत्ति आज भी जारी है।आज नारी जीवन में काफी बदलाव आया है।आज की नारियाँ जटिल परिस्थितियों के सामने प्राचीन काल की नारियों की तरह विचलित न होकर अपने अपार बल और क्षमता से उनका सामना करती है। समकालीन नारी अपना जीवन अपने ढंग से जीने पर बल दे रही है। शिक्षा से प्राप्त स्वतंत्र्य नारी जीवन को परिवर्तित करता है। नारी त्याग और बलिदान की मूर्तिमत भाव है। प्रकृति ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक भावप्रवण संवेदनशील बनाया है। फिर भी प्राचीन काल से आज तक की नारियाँ सुरक्षित नहीं हैं। प्राचीन काल में नारी का स्थान सिर्फ चूहा और बच्चे संभालने जितना रह गया था। समय बदल गया है और उसके साथ समाज में अलग-अलग रूप निर्माण हो गए हैं। आज की नारियाँ पुरुषों के द्वारा बनाये गये विधान को तोड़कर जी रही है। नारी की जरूरत जितना घर पर है उतना ही समाज पर होता है। उषा जी अपने साहित्यों के माध्यम से नारियों की अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए जीने के लिए प्रेरणा देती है।

उषा जी का छठा उपन्यास 'कथान्तर' 2004 में प्रकाशन किया। प्रस्तुत उपन्यास नारी जीवन पर आधारित है। प्रस्तुत उपन्यास में उषा जी ने नारी के विभिन्न शोषण जैसे आर्थिक रूप से कमजोर होना, नारी का शारीरिक शोषण, एक नारी के द्वारा दूसरी नारी का अत्याचार, पुरुष के द्वारा बराबर दर्जा देना आदि का चित्रण किया गया है। समाज हर बार नारी को एक रूप से देख रहा है। कभी जिम्मेदारी देकर बंधन में बांध दिया है । कभी माता, बहन, पत्नी, हितैषी आदि रूपों में रंगाकर मन चाहे आनंद लेता रहा है। परंतु इस समाज को यह भी सोचना चाहिए था कि

वह भी एक मनुष्य है।"[1] नारी समाज के परिवर्तन के साथ चलना चाहती है और अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहती है। लेकिन परिवार में पिता , भाई , और पति का पात्र महत्वपूर्ण रहने के कारण नारी घर चलाने में सक्षम रहती है। आज का समाज पुरुष प्रधान है। इसलिए नारी को सदा पुरु ष के पीछे जीने के लिए मज़बूर करता है। पुरुष और स्त्री बराबर है। लेकिन नारी को सदा अपनी वजूद के लिए दिन व दिन संघर्ष करना पड़ता है- पुरुष जाति से, अपने परिवार वालों से, समाज से, व्यवस्था से प्रस्तुत उपन्यास का उदाहरण है।

'कथान्तर' उपन्यास में पुरुष प्रधान समाज में सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त होकर मूक बनकर सभी अत्याचार सहनेवाली नारी का चित्रण है। साथ ही अपना प्रतिरोध व्यक्त करके स्वालंबी बनने वाली नारी को भी उपन्यास में देखने को मिलता है। उपन्यास में मणि, माला, शारदा और गंगा की कहानी बताती है।

उपन्यास का आरंभ मणि के अतीत से होता है। मणि को एक विधवा के रूप में चित्रित किया गया है। उसे पति की मृत्यु के बाद ससुराल में रहने नहीं देता है। इसी वजह से मणि अपने बेटे के साथ मायके आती है। लेकिन वहाँ उसकी स्थिति में कोई बदलाव नहीं है। वहाँ रहकर घर का सारा काम करके मणि के दिन बीत जाते थे। बेटे की पढ़ाई के लिए कुछ पैसे बहन और भाई से मांगते हैं। लेकिन समाज सेविका बहन और भाई ने उसे खाने-पीने, पहनने के लिए दिए जाने वाले पैसे बताकर उसका अपमान करते हैं।

"नहीं सवि दीदी, उसे तो मैं पढ़ाऊँगी।/क्या होगा पढ़कर? कलेक्टर बनेगा?/वह तो भविष्य बताएगा।/ इतनी ऐंठ एक मामूली नौकरानी की"[2]

इसलिए मणि अपने बेटे के भविष्य के लिए काम करने देवेंद्र बाबू के घर में आती है। वहाँ मणि की मुलाकात माला से होती है। उषा जी ने माला को पिता और पति द्वारा शोषण का शिकार होती नारी के रूप में चित्रित किया है। बचपन में पिता उसकी माँ को चरित्रहीन साबित करने का प्रयास करते थे और शराब पीकर सदा मारते थे। एक दिन शराब पीकर माला की बहन का बलात्कार करता है। वह गर्भवती होने के कारण उसे गर्भ गिराने की दवा देकर वह मारता है। इसी वजह से मणि आत्महत्या कर लेती है।

लंपट बाप हंसा- तुम्हें माया की वज़ह लेनी होगी। लड़की ने अपने आप को एकदम असहाय हालत में पाकर बाप के पाव पकड़ लिए मैं आपकी कन्या हूँ मुझे गंदी नजर से मत देखिए, जाने दीजिए। ऐसा नहीं हो सकता है। मैं तुम्हें उसी नजर से देखूंगा जिससे मेरा जी चाहेगा।"[3]

माला वहाँ से भाग कर पुलिस के पास आता है और पिता को जेल में भेजता है। उसका दुख वहाँ न खत्म नहीं होता है। विवाह के बाद माला की ज़िंदगी में पति द्वारा शोषण हो जाता है। उसका पति एक तांत्रिक था और अपने चार पुत्रों का परवरिश करने के लिए तैयार नहीं होते हैं। वह तंत्र से माला को मारने की कोशिश करता है। लेकिन देवेंद्र नाथ की सहायता से माला मृत्यु से बचती है। बच्चों का पालन पोषण करने के लिए देवेंद्र नाथ के घर में काम करती है और उनकी सहायता से अपने पाव पर खड़ी होकर अपने बच्चों की देखभाल करती है।

बाद में माला मणि से देवेंद्र बाबू की माँ गंगा के बारे में बताती है। उनकी माँ गंगा की छोटी उम्र में पति मर जाता है। पति की मृत्यु के बाद उसे वैधव्यपूर्ण जीवन पति के घर में बिताना पड़ता है। वहाँ नौकरानी की तरह सारा काम गंगा करती थी। वहाँ रहकर जेठानी के 11 बच्चों की देखभाल करती थी । जेठानी उसे बहुत कुछ खरी खोटी सुनाती है। "मैं सचमुच बेकसूर जीजी।औरत जात की बिसात कितनी? जुल्म जोर से मर्द ही उसे अपनी हवस का शिकार बना लेती है। गंगा आंसू बहाते हुए बोली "[4] गंगा की जेठानी की बेटी शारदा अपने पिता से सदा लड़ती थी कि चाची से अनैतिक संबंध स्थापित करने के लिए और पुत्र जिम्मेदारी निभाने के लिए। लेकिन पिता देवेंद्र नाथ जिम्मेदारी निभाने के लिए तैयार नहीं था? वो गंगा को

चरित्रहीन कहता है बाद में गंगा ने पुत्र को शारदा के हाथों में सौंपकर आत्महत्या कर लेती है। शारदा की भी स्थिति ससुराल में अच्छी न थी। शारदा के तीन पुत्रियाँ हैं। पुत्र न होने के कारण ससुराल में उसे चूहे को मारने की दवा पिलाकर मारती है। उपन्यास के अंत में देवेंद्र नाथ की हालत बिगड़ जाती है। इसी कारण से मणि से घर लौटने के लिए देवेंद्र कहते हैं, क्योंकि मणि को संभालने के लिए उनके शरीर में शक्ति नहीं थी। मणि उनकी सेवा करने के लिए तैयार है लेकिन देवेंद्र बाबू उसे मना करता है। मणि उन्हें दान और प्रतिदान का फर्क बताते हैं । "आपके पिता के लिए औरत भोग की वस्तु रही और आप के लिए दया की "[5] तब मणि की डाँट सुनकर देवेंद्र नाथ को अपनी माँ गंगा की याद आती है और उससे सेवा लेने से तैयार होते हैं।

उषा जी ने गंगा और शारदा को शोषण सहनेवाली नारी के रूप में चित्रित किया है। इन दो नारियों का रक्षक है देवेंद्र नाथ। उपन्यास में परालंबी बनकर जीने वाली नारियाँ है मणि और माला। देवेंद्र नाथ की सहायता से उन दोनों नारियाँ स्वावलंबी बनती हैं। देवेंद्र नाथ माँ और बहन का संरक्षण करने के लिए उस समय कोई नहीं था। इसलिए देवेंद्र नाथ नारी को देवी के रूप में देखता है । उनकी सहायता से माला को अनेक कष्ट सहने पर भी अपने मुकाम तक पहुँचती है।

'कथान्तर' उपन्यास में गंगा,मणि, माला और शारदा लगभग अनपढ़ नारियाँ हैं। सभी नारियाँ अपनी अस्मिता के लिए बहुत हिम्मत से लड़ती हैं। इन सब नारियों के रक्षक के रूप में देवेंद्र नाथ को चित्रित किया गया है। पिता द्वारा माँ पर अत्याचार देखने के कारण देवेंद्र नाथ नारियों को अपनी माँ की तरह देखता है और नारियों को आगे बढ़ाने के लिए नारियों को मार्गदर्शन देते हैं।

उपन्यास में उषा जी ने नारियों को पुरुष के समान सम्मान देने को कहते हैं। ऐसा नहीं होता तो समाज में नारियों को हर क्षेत्र में अन्याय होते हैं। उपन्यास में गंगा और शारदा को उस समय जीने वाले लोग पुरुष के बराबर नहीं देखा है। इसलिए उन दोनों पर शोषण होता रहा है और उस शोषण से बचने के लिए और अनसे लड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं। वह सब सहकर जीते हैं लेकिन मणि और माला पुरु ष के समान समाज में जीना चाहती हैं उनकी जिंदगी में अनेक कठिनाइयाँ होकर भी वह दोनों अपनी इच्छा के अनुसार जीने का निर्णय देता है।

उषा जी ने उपन्यास में नारियों को सक्षम बनाया है जो अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए। अपने आत्म सम्मान की रक्षा करने के लिए नारियों को जो बल देते हैं उपन्यास के माध्यम से। आज के पुरुष प्रधान समाज में नारियों को अकेला रहना मुश्किल होता है। लेकिन वह अपना मार्ग खुद चुनकर साहस से निडर होकर समाज में रहने लगी है। उषा जी ने सकारात्मक दृष्टि से देखा है कि नारी अपने परिवार में, समाज में सुरक्षित रही हैं। नारी अपने भोलेपन, आस्था, विश्वास और त्याग के कारण उसे पुरुष प्रधान समाज में बार-बार कीमत चुकानी पड़ी है । उसे इसी में गंभीरता से खड़े रहने की प्रेरणा उषा जी ने क्रान्ति उपन्यास के माध्यम से जैसे भोली भाली नारियों के सामने रखा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उपन्यासकार सुशीला टाकभौरे एवं नारी अस्मिता - संध्या दत्ता कदम- पृष्ठ 92 विनय प्रकाशन कानपुर, 2007
2. कथान्तर - उषा यादव पृष्ठ 33 किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली 2023
3. वही - पृष्ठ 163
4. वही - पृष्ठ 66
5. वही - पृष्ठ 254

शोध निर्देशिका : डॉ सुधा ए एस

शोध छात्र

यूनिवर्सिटी कॉलेज तिरुवनंतपुरम

शैक्षिक क्षेत्र की सच्चाई की ओर एक नज़र : दीक्षांत उपन्यास के संदर्भ में

राषिदा एन

साहित्य सदैव समाज का आईना रहा है। हमारे चारों जो कुछ भी घटित हो रहा है वही साहित्य में परिलक्षित होता है। इनमें उपन्यास के बारे में कहे तो उपन्यास समाज का प्रतिनिधि है। समाज में समस्त घटित घटनाओं से लेकर मानव के हृदय में होने वाली छोटी छोटी हलचल, द्वंद्व एवं संघर्षों की कहानी इसी के माध्यम से व्यक्त होती है। मनुष्य के बाहरी जीवन का जो रूप हम देखते हैं वह जीवन के पूर्ण आधार सत्य नहीं है क्योंकि मनुष्य के बाहरी व्यक्तित्व से भी अधिक उसकी आंतरिक भावना । उपन्यास ही एक ऐसी विधा है जो मनुष्य के भीतर में प्रवेश कर उसका चित्रण भी उतनी ईमानदारी से करता है ।

सूर्यबालाजी के दीक्षांत उपन्यास में शिक्षा के मंदिर की खोखली होती नीव और युवा पीढ़ी के अंधकारमय जीवन के खतरे को इंगित करने का प्रयास किया गया है । पद और धन का अहंकार इस तरह सर चढ़कर बोलने लगा है जहाँ ज्ञान को लक्ष्मी के पैरों के तले रौंद दिया जाता है। शिक्षण संस्थान आज विद्या का मंदिर न रहकर डिग्री बेचने की दुकान मात्र रह गया है। इन्हीं डिग्रियों को खरीद कर शिक्षक वर्ग तैयार हो रहा है जिनके हाथों में हम भावी पीढ़ी को सौंप कर निश्चित हो रहा हो जाते है। जहाँ उनके उज्जवल भविष्य के कामना करना ही व्यर्थ है। संस्कार , नैतिकता, अनुशासन आदि शब्द के शब्दकोश की शोभा मात्र रह गए हैं। ऐसे शब्द उपहास का विषय बन चुके हैं। केवल सतही सुधार की वजह यह समस्या को जड़ से काटने की आवश्यकता है।

शिक्षा हमारे जीवन की प्राथमिक संस्कार है जो हमें जन्म से पूर्व ही माता के द्वारा प्राप्त होती हैं। वही संस्कार हमारे जीवन के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। लेकिन आज के परिदृश्य में देखे तो उन संस्कारों का निर्वाह हमारी कातरता का प्रतीक बन चुका है। जिनकी परिणति अक्सर दुखांत ही होती है। जैसे कि इस उपन्यास के पात्र विद्याभूषण को अपने मानवीय मूल्य की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ती है। इस उपन्यास की प्रमुख कथा शर्मा से संबंधित है अध्यापक जीवन की समस्याओं को सूक्ष्म चित्रण इस उपन्यास में पाया जाता है। सूर्य बालाजी का उपन्यास दीक्षांत एक अध्यापक विद्याभूषण शर्मा सर को केंद्र में रखकर सामान्य आदमी की जीवन विरोधी और कठिन समय की कहानी है। जिसमें स्थितियों के रेगिस्तान में आदमी के अंदर की हरियाली क्रमशः सूखती जाती है। इस उपन्यास के छह भाग बनाये गये हैं, परिसर, यंत्रण के कोण, चक्रव्यूह, प्रयाण, लोग और आलोक बिंदु।

शर्मा सर स्नातकोतर हिंदी विषय में गोल्ड मेडलिस्ट है और शिक्षा के शीर्ष उपाधि पर पीएचडी से विभूषित है। लेकिन कॉलेज में उनकी शिक्षा की कोई महत्व नहीं दिया जाता। अन्य शिक्षक जो सामान्य शैक्षिक योग्यता प्राप्त हैं उनके बीच शर्मा सर ईर्ष्या का केंद्र बनते हैं। शिक्षक डिसूजा के शब्दों में "आपकी पीएच डी उसके सीने में कोफत के फन निकाल निकालकर फुफकारोगी कि नहीं,.... जूनियर अस्थाई अध्यापक उनसे ज्यादा योग्यता वाला और लियाकत वाला है।"[1] शर्मा सर निष्ठा से अर्चित ज्ञान विरासत नई पीढ़ी को सौंपना चाहते थे और काफी हद तक सफल भी होते हैं लेकिन कुछ छात्रों द्वारा रुकावटें पैदा की जाती हैं। उपन्यास का एक पात्र रतन बरुआ एक उच्च वर्गीय परिवार का उद्दंड छात्र है जो शिक्षकों को आए दिन परेशान करता रहता है। हिंसा फैलाने वा नकल करने दम पर परीक्षा के पास करने पर विश्वास रखता है। कॉलेज की व्यवस्था बिगाड़ना, शांति भंग करना और शिक्षकों के कार्य में बाधा डालना ऐसे छात्रों का परम धर्म है। शर्मा के शिक्षण के दौरान एक वाक्य- "देखिए परिश्रम ऐसे लिखते हैं.... चॉक लेकर ब्लैक बोर्ड की ओर मुझे अचानक एक चॉक का टुकड़ा उनके सिर के पिछले भाग पर लगा उनका गुस्सा खौला लेकिन उसे पीकर वापस मुडे जैसे कुछ ना हुआ हो।"[2] शर्मा सर द्वारा छात्रों को दंडित

करने का उनका विरोध करने पर उन्हें कॉलेज से निष्कासित किया जाने की धमकियाँ मिलने लगती हैं। लेकिन धर्म के रास्ते पर अडिग रहने वाले शर्मा सर काफी गलत का साथ नहीं देते।

शर्मा छात्रों की शिकायत नहीं करते हैं । छात्रों की गलतियों को सुधारने का प्रयास करते हैं। उस समय उन्हें अपने बचपन की याद आते हैं। उनके बचपन का नाम विद्याभूषण था। वे मेधावी छात्र थे। उनके पिताजी अध्यापक थे। विद्या भूषण विनय शील और आज्ञाकारी था। अध्यापकों द्वारा पूछे सवालों का जवाब बहुत ही सही तथा सलीखे से देता था। अपनी बुद्धिमता की कसौटी पर शर्मा बचपन में स्कूल के सभी अध्यापकों की प्रशंसा का पात्र बना हुआ था। डिप्टी साहब भी उनकी प्रशंसा करते हैं। भूषण के पिता सच्चे मार्गदर्शक थे। इसलिए अपने बचपन में होशियार तथा सदाचारी लड़के थे। बचपन की यादों में आज कॉलेज के अनुशासनहीनता का विचार शर्मा सर करते हैं। प्रोफेसर शर्मा अस्थायी नौकरी के कारण शाम के समय उनके दो बच्चों की ट्यूशन लेते हैं। तब उन्हें घंटों तक बच्चों का इंतजार करना पड़ता है। बच्चों की पढ़ने के बाद भी शर्मा को टक्कर की पत्नी का कुछ ना कुछ काम करना पड़ता है। जब वे काम करने से इनकार करते तब उन्हें बच्चा खेल रहा है या दूध पी रहा है जैसे बहाना बनाकर बिठाया जाता है। शर्मा साहब तो ट्यूशन पर मिले चाय पर भी संतुष्ट है। घर पर चाय नहीं लेते इस चाय की बचत द्वारा वे घर की कुछ चीज़ें खरीदना चाहते हैं। मिस्टर शर्मा को अपने बच्चों के लिए किताब जूते खरीदना काफी मुश्किल होता है। किसी विशेष अवसर पर बच्चों को अपने दोस्तों के कपड़े जूते मांग कर पहनना पड़ते हैं। उसके घर कभी सिर्फ दाल या सब्जी ही खाने में रहता है। फिर भी शर्मा अपने बेटों को बहुत प्यार करते हैं।

प्रोफेसर शर्मा सर क्वालिफाइड अध्यापक है। गुप्ता जी एमए थर्डक्लास है ।शर्मा जी का क्वालिफिकेशन गुप्ता जी को बोझ लगता है। अन्य कोई कारण न होते हुए भी वह शर्मा जी का दोष करते हैं। उस समय डिसूजा शर्मा सर को बताता है कि मिसेज गुलाटी अपने पति के साथ विदेश जाने वाले है और उसके लेक्चर्स प्राप्त करने के लिए प्रिंसिपल से बातें करें । परंतु समस्याओं का सामना करते शर्मा सर अपना आत्मविश्वास खो देते हैं। उनके आत्मविश्वास को वापस लाने का काम डिसूजा करता है । सुबह से ही प्रिंसिपल के सामने कैसे कहना है इसपर सोचते रहते शर्मा सर अपने आप पर झुझलाते समय पसीना तक आ जाता है ,जैसे पसीनाचुचुहा आया...यही तो ऊँची कुरसी पर बैठे आदमी को बोलने की पूरी छूट रहती है। किसी को भी कुछ भी कह देना उसका अधिकार है और सुनकर हिहियाते रह जाना दूसरे पक्ष की लाचारी। इसी विचार में प्रिंसिपल से जाकर पूछते हैं। प्रिंसिपल इस संदर्भ में ऐसी सूचना अभी तक नहीं मिली है ऐसा कहकर उन्हें बाहर भेजते हैं।

इस कॉलेज के अध्यापकों के तीन वर्ग दृष्टिगत होते हैं। इसमें मध्यम वर्ग में शर्मा सर को देखा जा सकता है । जो शैक्षिक दृष्टि से उत्कृष्ट है फिर भी उन्हें न तो उचित पदवेतन प्राप्त होता है और न हीं सहकर्मियों के बीच सम्मान व सहयोग मिलता है। "दीक्षांत उपन्यास में उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है मिसेज सब्बरवाल। धन और पद का नशा उनके सर चढ़कर बोलता है मिसेज सब्बरवाल की कार हल्के संगीत सुरवाला हॉन बजाती हुई कॉलेज के गेट दाखिल हो, झटके से रूकी। अंदर से मोती जडे टॉप्स और विदेशी खुशबू बिखरती रूमाल अंगुलियों में फॅसाती हुई मिसेज सब्बरवाल उतरी।"[3] कॉलेज का तीसरा वर्ग है प्रशासनिक समिति यह एक पूंजीपति वर्ग है निजी स्वार्थ पूर्ति के लिए असामाजिक तत्वों को बढ़ावा देते हैं और शिक्षकों को प्रशासन के हाथों की कठपुतली बनाए रखना चाहते हैं। इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं राजदान और चंदभान। "शिक्षक का कार्य क्षेत्र छात्रों में सारे गुणों का विकास करना है और उनमें नैतिक मूल्य की प्रतिष्ठा करना है। यदि शिक्षक मूल्यों का हनन करने लगे तो आगे चलकर छात्रों के जीवन में सकारात्मक मूल्य स्थापित नहीं हो पाएंगे"[4] ।अत्यंत शांत सात्विक और विनय शील शर्मा सर को कॉलेज प्रशासन द्वारा इस हद तक प्रताड़ित किया जाता है। वह अपने मानसिक व शारीरिक संतुलन खो बैठते हैं।यह असंतुलन उनकी मृत्यु का कारण बनता है।

"दरअसल शिक्षा के नाम पर साक्षरता के साथ मूल्य में एक बड़ी गिरावट आई है गाँव में पढ़ने वाला जमात पहले अपने घर से अलग होते हैं फिर अपने गांव से इसलिए

स्कूल कॉलेज से होता हुआ अनजाने एक परजीवी समाज देश की नियति बन चुका है"[5] इस उपन्यास में लेखिका ने शिक्षा क्षेत्र को आधार बनाकर समाज की जड़ों को काटती है। अमानवीय विभिन्न स्थितियों पर पूरी शक्तिसामर्थ्य से प्रहार किया है ताकि कुछ परिवर्तन हो। उच्च शैक्षिक शैक्षिक योग्यता के बावजूद नायक की आर्थिक स्थिति बहुत रुग्ण है। घर की सामान्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन्हें ट्यूशन पढ़ाना पड़ता है। लेकिन फिर भी उनके परिवार को अत्यंत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। शर्मा सर की मृत्यु के बाद ही उनकी पत्नी के पास कोई जमा पूँजी नहीं रहती है और उनके अंतिम संस्कार के लिए उन्हें अपने सोने की बालियाँ बेचनी पड़ती हैं।

समाज शिक्षकों की सामान्य चिंता का भार वहन कर ले तो उन्हें राजनीति के प्रपंचो में लिप्त नहीं होना पडेगा। परिणामतः शिक्षा व्यवस्था में सुधार होगा, जिसे समाज को भी लाभ मिलेगा। दीक्षांत उपन्यास में बदलते दौर की विसंगतियों को उकेरा गया है। विद्रूप संदर्भ को उभारने का प्रयास किया गया है। दुख और द्वंद्व की परिस्थितियों के बीच जीवन के प्रति आस्था और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखने की चाहत की गई है। विद्याभूषण शर्मा के माध्यम से समाज के आदर्श गुरु की छवि प्रस्तुत की गई है। "चक्रव्यूह में गिरा हुआ विद्या भूषण कोई अभिमन्यु नहीं है बल्कि शिक्षेतर व्यावसायिक शक्तियों में समय-समय उनके आदर्श और व्यक्तित्त्व को कुचल रौंदकर पूरी तरह अस्तित्व विहीन बना दिया है"[6]। विद्या के बढ़ते व्यवसाय के कारण आगामी दुष्परिणामों की ओर संकेत किया है। उच्च पदों पर बैठे अयोग्य व्यक्तिअधिकारों का दुरुपयोग करके नई समस्याओं को जन्म दे रहे हैं। आज मानव अत्यंत स्वार्थ और आत्म केंद्रित हो गया है। ऐसी स्थिति में मूल्य का निर्वाह की बात करना तलवार की धार पर चलने की जैसा है। जो मूल्यों का निर्वहन करते उनकी भाँति उपलब्धियाँ निम्नतर होती हैं। शर्मा सदैव अन्याय का सामना करते हैं। "बरुआ से कहते हैं मेरे विषय में नंबर घटाने बढ़ाने या पास फेल करने का अधिकार सिर्फ मेरा है .....तुम प्रिंसिपल ,वाइस प्रिंसिपल तक जाकर अपना सोर्स आजमा सकते हो इस मुद्दे में मैं झुकने वाला नहीं इतना समझ लो बेकार मेरा समय नष्ट करने का कोई फायदा नहीं"[7]।

आज चंद पैसों के लिए अपने ईमान बेचते देर नहीं लगती और किसी को भी हद तक गिर जाते हैं तो लेकिन शर्मा सर ने अपने स्तर पर मूल्य को जीवित रखा। जीवन में टूट जाते हैं।

निष्कर्ष रूप से कहते हैं कि शर्मा सर के माध्यम से आज के ईमानदार निष्ठावान विनम्र और सच्चे व्यक्तिकी यातना-कथा को लेखिका ने करुणतम लेकिन विश्वसनीय रूप से उभरा हैं। उनकी आत्महत्या, घुटन, पीड़ा और नैराश्य में जीते आज के व्यक्ति की हताशा परिणति है। भाई भतीजावाद से तंग आकर आखिर शर्मा जी जैसे आदर्शवादी अध्यापक को आत्महत्या करनी पड़ती है ।शर्मा सर के समान लाखों आदर्शवादी अध्यापक ऐसी यातनाओं से गुजर रहे हैं । उन तमाम लोगों का यह चरित्र प्रतिनिधित्व करते हैं । हमारे समाज में क्या कुछ घटित हो रहा है जिन्हें सुधारने के लिए हमारा द्वारा प्रयास किया जा सकते हैं शिक्षा के सौदागरों के चंगुल से भावी पीढ़ी को कैसे बजाया जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सूर्यबाला -दीक्षांत ,अमन प्रकाशन कानपुर तृ.सं 2017 पृष्ठ-47
2. वही पृष्ठ 14
3. वही पृष्ठ 84
4. डॉ प्रवीणचंद विष्ट शिक्षण संस्थाओं का पोस्टमार्टम दीक्षांत के बहाने, अमन प्रकाशन, कानपुर 2017 ई पृष्ठ 135
5. शुकदेव सिंह दीक्षांत, शिक्षा की दुनिया में जो है, ज्ञान गंगा दिल्ली पृ स 2012 पृष्ठ 160
6. मदनमोहन तरुण दीक्षांत, अमन प्रकाशन ,कानपुर 2017 ई पृष्ठ 177
7. सूर्यबाला -दीक्षांत,अमन प्रकाशन, कानपुर 2017 पृष्ठ 82

शोध निदेशक : डॉ इंदु के वी

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कार्यवट्टम

'ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ' में लड़कियों की आत्मा की आवाज़

डॉ ऐडा मानुवेल

सन् 1900 के आसपास भारत में लड़कियों की दशा बहुत शोचनीय थी। लोगों का दृष्टिकोण बहुत बुरा था। प्रायः लड़कियों को जन्म देते ही मार दिया जाता था। उन्हें बोझ समझा जाता था। यदि उनका जन्म हो जाता था तो पूरे घर में मातम छा जाता था। लड़के को ही महत्त्व दिया जाता था। ऐसे वातावरण में लड़कियों के पालन-पोषण तथा पढ़ाई-लिखाई आदि पर ध्यान नहीं दिया जाता था। समाज में बाल-विवाह, दहेज-प्रथा तथा सती-प्रथा जैसी कुरीतियाँ फ़ैली हुई थीं। ऐसे वातावरण में लिखी कहानी है असगर वजाहत की ड्रेन में रहनेवाली लडकियाँ।

कहानी ही शुरुआत इस प्रकार है - "संसार से लडकियाँ गायब हो गयी हैं। पूरी दुनिया में अब कोई लडकी नहीं है। यह विचित्र स्थिति पैदा कैसे हुई?"[1] कहानी इसके कारण को सूचती है। यह सरला की कहानी है। अस्पताल में नर्स ने सरला से बताया - उसे लडकी हुई है। पर दुखद बात यह है कि न सास, न ससुर, न पति, न देवर, न ननद कोई सरला से मिलने नहीं आया। कारण उनसे कई लड़कियों के जन्म हुए है - पहली लडकी का जन्म, दूसरी लडकी और अब तीसरी। वे बहुत वेदना से रह गयी। सरला ने बच्ची को दूध पिलाने के बाद बाथरूम जाकर उसे 'पाट' में डाल दिया। जंजीर जला दी। यह देखने के लिए नहीं रुकी कि बच्ची फ़्लैश के पानी से बहकर गटर में गयी या नहीं। उसने वहाँ एक हिचकी जैसी आवाज़ सुनी। उसने सोचा कि यह मामूली आवाज़ है। अगर वह बच जाती तो उसके रोने से धरती फट पड़ती। थोड़ी देर बाद नर्स आने पर सरला ने सबकुछ नर्स से बता दिया। यहाँ भ्रूणहत्या का जिक्र किया गया है कि आज भ्रूण-हत्याएँ बढ़ रही हैं, इसलिए सरकार कड़े कानून बना रहीं है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' सरकार द्वारा शुरू की गई सबसे हालिया पहल है, जिसका उद्देश्य लोगों को लड़कियों को बचाने के लिए सक्रिय रूप से प्रोत्साहित करना है। यह भारत सरकार की सबसे महत्वाकांक्षी योजनाओं में से एक है, जिसका उद्देश्य व्यापक जागरूकता पैदा करना और महिलाओं को बेहतर तरीके से सेवाओं तक पहुँचने में मदद करना है।

आज लड़कियों के जन्म के संबंध में स्थितियाँ थोड़ी बदली हैं। आज शिक्षा के माध्यम से लोग सजग हो रहे हैं। लड़का-लड़की का अंतर धीरे-धीरे कम हो रहा है। आज लड़कियों को लड़कों की तरह पढ़ाया-लिखाया भी जाता है। परंतु लड़कियों के साथ भेदभाव पूरी-तरह समाप्त नहीं हुआ है। इसी कारण से सरला जैसी असहाय, उत्पीडित और उपेक्षित स्त्रियाँ समाज की हकीकत है।

सरला का विषय अदालत में आ गया। सरला का बयान सटीक था। सरला का मानना था कि "उसने अपनी बच्ची के सुन्दर भविष्य के लिए किया है, माँ-बाप का काम अपने बच्चों के भविष्य को सुधारना है।"[2] जज ने सरला को छोड़ दिया और यह साबित हो गया कि यह होश हवास में नहीं किया है। सब यह समझना चाहिए कि आज की लड़कियाँ कल की महिलाएँ हैं। उनके सुन्दर भविष्य के लिए अच्छी शिक्षा देनी चाहिए। लड़कियों को बोझ मानने की मानसिकता को जमीनी स्तर पर बदलना होगा और जागरूकता फैलानी होगी। इसमें शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है और यह महिलाओं को सशक्तबनाएगी।

रात में 'गटर' से निकलकर बहुत ही सुन्दरी होकर उसकी लड़की सरला के पास आ गयी। बच्ची ने माँ से कहा- "चलो तुम भी मेरे साथ 'गटर' में चलो वहाँ बड़ा आराम है।[3] लिकिन अफ़सोस था कि माँ को वहाँ जा नहीं सकती थी। जाती जाती बच्ची ने कहा - "चिंता मत करो माँ.....तुम आ जाओगी.....एक दिन आ जाओगी।"[4] बच्ची अपनी माँ की वेदना समझती है। अपने आराम को वह शेयर करना चाहती है। लड़कियाँ अपने परिवार और माता-पिता के प्रति देखभाल और प्यार करने वाली होती हैं और वे हर काम में अपना सर्वश्रेष्ठ देती हैं।

सरला का जीवन अपने घर में बहुत दर्दनाक पड गया। दुरवस्थाओं से जीवन गुज़ारना पड़ा। सरला के पति जगदीश्वर को बिरादरी में ही एक अच्छा रास्ता मिला। उन्हें अच्छा सा लगा, दहेज भी अच्छा मिलनेवाला था। उन्हें सरला एक बाधा बन गयी। एक दिन तेल न होने के बावजूद 'स्टोव' फटकर सरला सौ प्रेतिशत जल गयी। उनकी मृत्यु हो गयी। सरला के पिता, दो भाई सब ने आकर राख के पैर छूकर नमस्कार किया। पुलिस से बयान किया कि वह

मानसिक रूप से असंतुलित थी और लापरवाही के कारण ही 'स्टोव' फट गया है। असंतुलित और लापरवाही के थोप लेकर पूर्ण रूप से जलकर सरला पूरी राख हो गयी थी।

इसकी मुकदमा चलाने के लिए कोइ नहीं था। बड़े लडके, छोटा लड़का सब अपने अपने काम पर व्यस्त थे। एक लडकी ब्याहने को थी। वे बदनामी हो गयी तो लड़का तक न मिलेगा - कहकर सब वहीं समाप्त कर दिया। उसी रात 'ड्रेन' में - यानी गंदे नाले वाले पाइप में सरला बच्ची से मिली। दोनों मिलकर बहुत प्रसन्न हुई। वहाँ 'ड्रेन' लड़कियों की दुनिया थी। तितलियों की तरह उडती, महकती, चिडियों की तरह गाती हर लडकी।

समय बीतता गया। आखिरकार दुनिया में लडकियाँ खत्म हो गयीं। यानी सब लडकियाँ 'ड्रेन' में पहुँच गयी थी। पुरुष संसार बडी परेशानी में पड गया। मानव जीवन का अस्तित्व केवल पुरुषों और महिलाओं दोनों की समान भागीदारी से ही संभव है क्योंकि वे दोनों इस ग्रह पृथ्वी पर मानव जाति के अस्तित्व के लिए समान रूप से जिम्मेदार हैं। दोनों लिंगों की समान भागीदारी एक राष्ट्र के विकास के लिए उत्तरदायी है और महिलाओं का अस्तित्व अधिक महत्वपूर्ण है। सभ्यता का निर्णय दोनों साथ साथ लेते है। अपने जीवनकाल के दौरान, महिलाएँ एक बेटी, माँ, गुरु, बहन, पत्नी, चाची और दादी के रूप में प्रमुख भूमिका निभाती हैं।

समाज आदर्श माँ, पत्नी, बहन और बेटी की कामना करता है, लेकिन यह कैसे संभव हो सकता है जब लड़की को माँ के गर्भ में ही मार दिया जाता है, और अगर वे पैदा होती हैं तो उनके साथ जीवन भर भेदभाव किया जाता है, उन्हें अच्छा पौष्टिक भोजन नहीं दिया जाता है, और यहाँ तक कि उन्हें आवश्यक शिक्षा भी नहीं दी जाती है जो उनके समग्र शारीरिक और मानसिक विकास को बढ़ावा देती है। समाज में कई सामाजिक बुराइयाँ माता-पिता को लड़की पैदा करने से मना करती हैं और अन्य सामाजिक बुराइयाँ वे हैं जो दहेज़ को जन्म देने के लिए जिम्मेदार हैं।

संयोगवश एक आदमी ने एक 'गटर' खोला तो उसे अद्वितीय सुंदरियाँ दिखाई पड़ीं। पुरुषों के बीच में यही बातचीत हो गयी। पर किसी के पास 'ड्रेन' में उतरने की हिम्मत नहीं थी। एक दिन लडकी की खोज में सबसे हिम्मतवाले पुरुष 'गटर' में उतरा। वहाँ सभी सुन्दरियों को देखकर उनकी आँखें खुली ही रह गयीं। उस आदमी ने सरला की लडकी के सौंदर्य पर आकर्षित होकर ब्याह करने का निवेदन किया। तब "लड़कियों ने आदमी को घेर लिया और पूछा कि तुम यहाँ आए क्यों हो?"[5] आदमी ने कहा कि लडकी की खोज में आया है। उसने लड़कियों से विवाह करने का, प्रेमी बनने का, दिल की रानी बनाने का सब वादा किया। लड़कियों ने कहा सभी पुरुषों ने आपना पुरुषत्व देकर आपको यहाँ भेजा है। इसलिए वापस जाना है तो पुरुषत्व यहाँ रखकर जाना चाहिए।

पुरुष घबरा गया। वह वापस में ड्रेन से गया तो उसके पास पुरुषत्व नहीं था। क्यों? पुरुषत्व अब लड़कियों के पास है। लडकियाँ ही तय करती हैं कि पुरुष प्रधान समाज को कायम रखना है या नहीं। बिना महिलाओं के अस्तित्व से पुरुषमेधा समाज की शून्यता की ओर कहानीकार यहाँ इशारा देता है।

एक ऐसा युग था कि लड़कियों को बंद कमरे की चार दीवारी के अंदर कैद करके रखा जाता था। शिक्षा को पाने का अधिकार भी केवल लड़कों को ही मिलता था। कुछ उच्च वर्गों की लड़कियाँ ही शिक्षित थीं परन्तु उसकी संख्या भी गिनी चुनी थी। ऐसी लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। ये सब महिलाओं की उच्चस्तरीयता के कारण ही है। इसलिए कहानीकार कहना चाहता है कि पुरुषत्व वास्तव में महिलाओं के कारण ही है। कहानीकार यह निष्कर्ष पर पहुँचते है कि आज संसार में रहनेवाले पुरुषों के पास पुरुषत्व नहीं है जो ड्रेन में रहनेवाली लड़कियों के पास है। नारी के अस्तित्व से ही पुरूषों के पुरुषत्व को स्थान मिलता है। नहीं तो लडकियाँ जहाँ हो वहाँ पुरुषत्व बनता है।

संदर्भ :

1. असगर वजाहत - चुनी हुई कहानियाँ : ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ-सं अनीता मिश्रा, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ 20
2. वही - पृ. 20
3. वही - पृ. 21
4. वही - पृ. 21
5. वही - पृ. 22

एसोसिएट प्रोफेसर

सरकारी विक्टोरिया कॉलेज, पालक्काड़

गिलिगडु : बूढों की पीड़ा का यथार्थ चित्रण

डॉ रंजी कोशी

'गिलिगडु' चित्रा मुद्गल जी का तीसरा उपन्यास है। 'गिलिगडु' 2003 में प्रकाशित और व्यास सम्मान से पुरस्कृत है। यह चित्रा जी का एक सौ चवालीस पृष्ठों का सबसे छोटा उपन्यास है। इसकी मुख्य कथा बूढ़ों के दुखपूर्ण जीवन पर आधारित है। जसवंत सिंह, कर्नल विष्णु नारायण स्वामी, नरेन्द्र, सुनयना, श्रीनारायण, अनुश्री, सुनगुनिया आदि इसके प्रमुख पात्र हैं।

'गिलिगडु' का कथानक इस प्रकार है - सेवानिवृत्त सिविल इंजिनीयर बाबू जसवंत सिंह की पत्नी बवासीर का मरीज़ थी। बीमारी तीव्र होने के कारण उनकी मृत्यु हो गयी। इसी बीच जसवंत सिंह का बालसखा हरिहर दूबे भी मृत्यु का शिकार बन गये। अकेलेपन से मुक्तिपाने के लिए जसवंत सिंह डॉक्टर की सलाह पर कानपुर छोड़कर बेटा नरेन्द्र के साथ दिल्ली के ग्लैक्सी अपार्टमेंट्स में रहने का निश्चय किया। उन्होंने वहाँ जाने के पूर्व कानपुर की संपत्ति नौकरानी सुनगुनिया की देखरेख में छोड़ दी। दिल्ली में उनको रहने का स्थान एक छोटा कमरा है। फिर यह एक बालकनी के रूप में बदल गया। थोड़े ही समय के अंदर जसवंत ने समझ लिया कि बेटे के परिवार को उनके प्रति कोई आदर या प्रेम नहीं है। नरेन्द्र बचपन में अत्यन्त नटखट था। इसलिए उसको पिता जसवंत सिंह से कई प्रकार की सज़ाएँ भुगतनी पड़ीं। अब भी वह पिता को एक दुश्मन की तरह देखता है। मृत सास के गहनें और ससुर की संपत्ति किसी प्रकार छीनना बहू सुनयना का लक्ष्य था। इसलिए उसने ससुर से नकली प्रेम प्रकट किया। यह समझकर जसवंत सिंह ने अपने आप से कहा है "बाबू जसवंत सिंह! तुमने अगर नरेन्द्र की अम्मा की भाँति पकवान बनाने में दक्षता हासिल कर ली होती तो निश्चय ही बहू सुनयना के लिए तुम्हारी उपयोगिता होती। बूढ़ा ठेलुआ उसके लिए किस काम का जो खाने- हगने के अलावा कुछ और कर नहीं सकता।"[1]

घर में कुत्ते को देखभाल करने की ज़िम्मेदारी जसवंत सिंह पर है। उनका आत्म कथन है "इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं एक टॉमी और दूसरा अवकाशप्राप्त सिविल इंजिनीयर जसवंत सिंह। टॉमी की स्थिति निस्संदेह उसकी बनिस्बत मज़बूत है। उसकी इच्छा-अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता है पूरा घर। उनके लिए किसी को बिछे रहना ज़रूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसाइटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है।"[2] इसका ठीक विपरीत है घर में जसवंत सिंह की स्थिति।

घर के अकेलेपन को छोड़ने के लिए जसवंत सिंह प्रातः की सैर के लिए जाने लगे। सेवानिवृत्त कर्नल विष्णु नारायण स्वामी भी प्रातः की सैर को माननेवाले थे। धीरे-धीरे दोनों दोस्त हो गये। वे रसिक तथा विधुर थे। जसवंत सिंह के मन के सूनेपन को समझाकर कर्नल स्वामी उन्हें ज्यादा बहलाने का प्रयत्न किया। जॉगिंग के लिए जूते खरीदना जसवंत की तीव्र इच्छा थी, लेकिन नरेन्द्र ने अभी तक यह नहीं किया। कर्नल स्वामी ने जसवंत सिंह को जॉगिंग के जूते खरीद कर दिया साथ-ही-साथ सिनेमा दिखाया और शराब पीने के लिए एक कंपनी भी दिया। प्रतिदिन उन्होंने जसवंत को अपने परिवार के किस्से बताये। कर्नल स्वामी का परिवार प्रेम, संगीत, नृत्य और सहयोग का अपूर्व संगम था। परिवार के सभी सदस्य कर्नल स्वामी के आज्ञाकारी थे।

केदारनाथ में जाना कई सालों से जसवंत सिंह की इच्छा थी। नरेन्द्र अपने पिता से बिना बताए दोस्तों के साथ केदारनाथ में गया। एक दिन अचानक नरेन्द्र ने पिता से कानपुर का घर बेचकर अपना हिस्सा देने कहा। इसी बीच जसवंत सिंह की बेटी शालिनी ने उनको फॉन किया। उसने कहा कि नरेन्द्र दिल्ली की नौकरी छोड़कर ज्यादा धन कमाने के लिए विदेश में जाने की प्रतीक्षा कर रहा है। जसवंत सिंह को किसी वृद्धाश्रम में दाखिल करेगा। यह खबर उनको एक वज्रपात थी। धीरे-धीरे जसवंत की तबीयत

खराब होने लगी। अंत में नरेन्द्र ने उनको अस्पताल में प्रवेश किया। वहाँ से लौटने के बाद भी कर्नल स्वामी की अनुपस्थिति जसवंत सिंह को अखेरने लगी।

बारहवीं दिन तक प्रातः की सैर के लिए कर्नल स्वामी को न मिलने के कारण जसवंत सिंह उनके फ्लैट में जाने का निश्चय किया। फ्लैट बंद होने के कारण वे कर्नल स्वामी के घर में गये। पड़ोसिन श्रीमती श्रीवास्तव से पता चलता है कि उनका निधन होते हुए आज तेरहवें दिन हो गये। उनके परिवारवालों की असली कथा सुनकर जसवंत सिंह चकित हो गए। पिछले आठ सालों से कर्नल स्वामी फ्लैट में अकेले रहे हैं। स्वामी और उनके बेटे श्रीनारायण के बीच में रोज़ धन के लिए झगड़ा होने लगा। बेटे और बहू सब अलग रहा करते थे। बहू अनुश्री अपनी डेढ़ साल की जुड़वी बेटियों को छोड़कर नृत्यगुरु के साथ भाग गयी। कर्नल स्वामी की पत्नी ने पोतियों अर्थात् कुमुदिनी और कात्यायनी का पालन-पोषण किया। उनकी मृत्यु के बाद पोतियों को हैदराबाद के होस्टल में भेजा गया। उनको देखने के लिए कर्नल स्वामी श्रीनारायण को डरकर छिपके-छिपके जाते थे। उनकी मृत्यु के पहले श्रीनारायण यहाँ आया। धन के लिए दोनों के बीच में संघर्ष उत्पन्न हुआ। अंत में श्रीनारायण ने पिता को खूब मारा। उसको जाने के बाद कर्नल स्वामी सीढ़ियों से उतरते समय दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया था। उनके दाह संस्कार के समय भी बेटे नहीं आए। इतना कहने के बाद श्रीमती श्रीवास्तव ने अपने बारे में कहा है "ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई औलाद नहीं।"[3]

कर्नल स्वामी के घर से लौटते समय जसवंत सिंह कानपुर लौट जाने का निश्चय किया। उन्होंने यह निर्णय किया कि वसीयत बदलकर कानपुर की संपत्ति पुत्र नरेन्द्र को न देकर सुनगुनिया को देंगे। अपने दाह संस्कार का अधिकार भी सुनगुनिया का पुत्र अभिषेक आसरे को देंगे। ये सब सोचकर उन्होंने सुनगुनिया को फॉन करके कहा कि दोपहर का खाना बनाकर रखे। शताब्दी से वे कानपुर पहुँच रहे हैं। यहाँ 'गिलिगडु' की कथावस्तु समाप्त होती है।

उपन्यास का शीर्षक 'गिलिगडु' का अर्थ है 'चिडियाँ'। मलयालम में हम इसे 'किलिकलु' कहते हैं। यहाँ चिड़ियाँ या गिलिगडु कर्नल विष्णु नारायण स्वामी की पोतियाँ कुमुदिनी और कात्यायनी हैं। बच्चे वास्तव में चिड़ियों के समान हैं। वे हमेशा शोर मचाते हैं, शरारतें करते हैं और खेल खेलते हैं। कर्नल स्वामी के जीवन साँझ में प्रतीक्षा की किरणें इन गिलिगडु हैं। इसलिए 'गिलिगडू' शीर्षक अत्यन्त सार्थक है।

यांत्रिकीकरण, संबन्धों में आए बदलाव, संयुक्त परिवार का विघटन, अकेलापन, मृत्युबोध, बेकारी आदि महानगरीय समस्याओं का सबसे ज़्यादा प्रभाव बच्चों तथा बूढ़ों पर है। आज के इस यंत्र युग में संवेदनात्मक मन पूर्णतः यांत्रिक रूप में परिणत होता रहा है। नगर में मानव अपने आसपास की घटनाओं एवं दूसरों की जिन्दगी से बेखबर है। उसको पड़ोस में रहनेवालों तक का पता नहीं है। उसको एक दूसरे से बातचीत करने का भी समय नहीं है। वह हमेशा आगे बढ़ने की होड़ में ही रहता है। यांत्रिकीकरण के कारण पारिवारिक संबन्धों में बदलाव आया है। संयुक्त परिवार विघटित होकर अणु परिवार का रूप धारण किया है। ये सभी बूढ़े को अकेलेपन और अजनबीपन की ओर ले जाएगा। अकेलेपन से मृत्यु बोध भी उत्पन्न होता है। क्षमा गोस्वामी की राय में "आज का मानव जितना अधिक अपने में अकेला है, एक-दूसरे से अजनबी बने रहने के लिए अभिशप्त है, उतनी अधिक वह असुरक्षा की अनुभूति से ग्रस्त है, जो मृत्यु की छाया के रूप में उसके सिर पर सदैव मंडराती रहती है।"[4] महानगर की भीड़ के कारण हर एक व्यक्ति को केवल अपने की चिता है। उन्हीं से सारे मानवीय गुण नष्ट हो गए हैं। बूढ़े माता-पिता अपने घर में सबके साथ होते हुए भी अकेला है।

बूढ़ों की समस्या वर्तमान युग की एक प्रधान समस्या है। धन कमाने या बच्चों की उच्च शिक्षा को अधिक महत्व देते हुए वृद्ध माँ-बाप को घर में अकेले छोड़कर नगर के फ्लैटों या विदेश में जाने के लिए संतान आज तैयार हैं। यदि पिता विधुर या माता विधवा हो तो उनको वृद्धाश्रम में छोड़ते हैं। माता-पिता को अपने संग ले

जाना उनके अभिमान को ठेस पहुँचाना है, लेकिन ये माँ-बाप कभी भी अपनी संतानों में दोष आने के लिए नहीं सोचते हैं। उन्हें अपने पोतों से भी उपेक्षा मिलती है।

'गिलिगडु' में जसवंत सिहं और कर्नल विष्णु नारायण स्वामी संतानों से तिरस्कृत वृद्धों के प्रतिनिधि हैं। पोतों के संग खेलना, बातचीत करना, उनके साथ घूमना आदि जसवंत सिंह की इच्छाएँ थीं, लेकिन पोते सदा समय कंप्यूटर के आगे हैं। अपने जन्मदिन पार्टी में भी दादा को शामिल करना उनको बॉरिंग है। बहू सुनयना जसवंत सिंह से कहती है - "आखिर बाबू जी इस संभ्रांत सोसाइटी में उनकी इज़्ज़त खाक में मिलाने पर क्यों उतारू हैं? अपनी उम्र का लिहाज़ किया होता। अभी भी जवानी का जोश बाकी हो तो दिक्कत कैसी? चले जाया करें रेड़ लाइट एरिया में।"[5] परिवार में उनके साथ सभी लोग अछूतों जैसा व्यवहार करते हैं। उनको खाने के लिए रूखा-सूखा खाना है, जो बाकी लोग नहीं खा सकते। घर में एक पालतू कुत्ते का स्थान भी जसवंत सिंह को नहीं है। सुनयना को भी वे एक सिरदर्द है। जसवंत सिहं इस प्रकार दिल्ली में बेटे के परिवार के साथ होते हुए भी अकेला है। जसवंत सिहं की स्थिति ही है कर्नल विष्णु नारायण स्वामी को। उनकी पत्नी का भी निधन हो गया। बहू उन सब की उपेक्षा करके एक अन्य व्यक्ति के साथ जीती है। कर्नल स्वामी का पुत्र श्रीनारायण पिता की संपत्ति हड़पने के लिए उन्हें निरन्तर सताता है। अंत में कर्नल विष्णुनारायण स्वामी का निधन भी होता है। इतना होते हुए भी उनके पुत्र स्नेह में कोई कमी नहीं है। जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के पुत्र आज के कई पुत्रों के समान हैं। उनको पिता के प्यार की आवश्यकता नहीं, अपितु उनके धन चाहिए। इसलिए कर्नल स्वामी गरीब बच्चों को मुफ्त रूप में पढ़ाते हैं। डॉ. गोरक्ष थोरात की राय में "उनका बेटा नरेन्द्र भी कर्नल स्वामी के बेटे से बहुत अलग नहीं था। बस दोनों में अंतर इतना ही है कि उसने कभी अपने बाबू जी पर हाथ नहीं उठाया है। यह बात अलग है कि शब्दों के वार से वह कितनी ही बार अपने बाबू जी को घायल कर चुका था।"[6] कर्नल स्वामी से प्रेरणा पाकर जसवंत सिंह कानपुर का घर पुत्र को न देकर सुनगुनिया को देते हैं और उसकी संतानों के अभिभावक बन जाते हैं।

जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के द्वारा चित्रा मुद्गल आज के माता-पिता को यह चेतावनी देती है कि जिंदा रहते समय ही अपनी सारी संपत्ति संतानों के नाम पर लिखना खतरा है। इसके बाद संतान उन्हें घर के किसी कोने या वृद्धाश्रम में छोड़ते हैं। इस संदर्भ में डॉ. गोरक्ष थोरात का यह कथन अत्यन्त प्रासंगिक है "क्या वार्धक्य वृद्धाश्रमों में बिताने के लिए इन बूढ़ों ने अपनी जवानी बच्चों के लिए गला दी। अपनी इच्छाओं पर अंकुश रखकर बच्चों की खातिर सामान जुटाते रहे, क्या इस तपस्या का फल यही है, आगे आनेवाली पीढ़ी के लिए नाना-नानी, दादा-दादी केवल कहानियों के पात्र बनकर रह जाएँगे? यदि ऐसा होगा तो आनेवाला युग कितना भयावह होगा, जहाँ प्रेम, ममता, वात्सल्य नाम की चिड़िया दूर तक नज़र नहीं आएगी।"[7]

बुढ़ेपन में देख-भाल करनेवाले को अपनी वसीयत लिखने के लिए लोग आज तैयार हैं, चाहे वह संतान या नौकर या पड़ोसी हो। माता-पिता को न देखभाल करनेवाले संतानों को कानून द्वारा गिरफ्तार कर सकते हैं। संतानों को बोधवान बनाने से बूढ़ों को इस दारुण अवस्था से मुक्ति मिलती है।

संदर्भ सूची

1. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, पृष्ठ संख्या : 37
2. वही, पृष्ठ संख्या : 96
3. वही, पृष्ठ संख्या: 138
4. क्षमा गोस्वामी, नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ संख्या : 184
5. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, पृष्ठ संख्या : 59
6. डॉ. गोरक्ष थोरात, चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य, पृष्ठ संख्या: 55
7. डॉ. गोरक्ष थोरात, चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य, पृष्ठ संख्या: 55

असिस्टेंट प्रोफेसर , हिंदी विभाग
कैथोलिकेट कॉलेज , पत्तनमतिट्टा

हिंदी उपन्यास "कांच के पारे" मनोवैज्ञानिक नजरिए से

डॉ नयनकुमार चमनलाल परमार

परिचयः हिंदी साहित्य, आख्यानों और कहानियों की अपनी समृद्ध टेपेस्ट्री के साथ, एक अद्वितीय लेंस प्रदान करता है जिसके माध्यम से हम मानवीय भावनाओं, व्यवहार और मनोवैज्ञानिक परिदृश्यों की जटिलताओं का पता लगा सकते हैं। मानव मानस और मानवीय अनुभवों की गहराई को समझने की इस खोज में, हम एक साहित्यिक यात्रा पर निकलते हैं जो हमें पन्नों से परे और उन पात्रों के दिमाग में ले जाती है जो जीवन की जटिलताओं को पार करते हैं। हिंदी उपन्यासों की दुनिया उन कहानियों का खजाना है जो मानव अस्तित्व के विविध आयामों को दर्शाती है। ये उपन्यास हमारे विचारों, भावनाओं और आंतरिक संघर्षों के गहन और अक्सर अज्ञात क्षेत्रों को उजागर करते हैं। वे व्यक्तिगत मनोविज्ञान और सामाजिक गतिशीलता के बीच जटिल अंतरसंबंध का खुलासा करते हुए, मानवीय स्थिति में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

ऐसी ही एक साहित्यिक कृति जो गहन मनोवैज्ञानिक अन्वेषण को आमंत्रित करती है, वह है प्रख्यात लेखक मैथिली शरण गुप्त द्वारा लिखित हिंदी उपन्यास 'कांच के पारें'। स्वतंत्रता-पूर्व भारत की पृष्ठभूमि पर आधारित यह उपन्यास, अपनी भावनाओं और इच्छाओं के जाल में उलझे पात्रों की एक दिलचस्प गाथा है।

इस लेख में, हम 'कांच के पारें' की मनोवैज्ञानिक गहराइयों को जानने के लिए एक यात्रा पर निकले हैं, जिसमें मनोविज्ञान के लेंस का उपयोग करके मानव व्यवहार, रिश्तों और कथा के माध्यम से चलने वाले मानव मन के जटिल धागों को डिकोड किया गया है। हम मैथिली शरण गुप्त की साहित्यिक क्षमता की सराहना करते हुए, उपन्यास में मानवीय भावनाओं और मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल के चित्रण की जांच करते हुए, पात्रों के दिमाग की जटिलताओं के माध्यम से आगे बढ़ेंगे। हमारे साथ जुड़ें क्योंकि हम मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'कांच के पारें' की इस खोज पर निकल रहे हैं, जहां कागज पर शब्द मानव आत्मा की जटिलताओं को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण बन जाते हैं।

विस्तारः साहित्य की दुनिया एक गहन क्षेत्र है जहाँ शब्द न केवल कहानियाँ सुनाने की शक्ति रखते हैं बल्कि मानव मानस में गहराई से उतरने, भावनाओं की जटिलताओं का पता लगाने और मानसिक स्वास्थ्य की गहराई को उजागर करने की भी शक्ति रखते हैं। इस साहित्यिक क्षेत्र में, हिंदी उपन्यास एक विशेष स्थान रखते हैं क्योंकि वे अद्वितीय आख्यान पेश करते हैं जो विभिन्न कोणों से मानवीय स्थिति की अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

ऐसी ही एक सम्मोहक कथा है जो मानवीय भावनाओं, रिश्तों और मानसिक कल्याण की गहन खोज का द्वार खोलती है, वह है 'कांच के पारें'। प्रतिष्ठित लेखक मैथिली शरण गुप्त द्वारा लिखित, यह हिंदी उपन्यास संवादों का एक टेपेस्ट्री और पात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का एक जटिल अध्ययन है।

स्वतंत्रता-पूर्व भारत की पृष्ठभूमि पर आधारित, 'कांच के पारें' एक कथात्मक जाल बुनता है जहां पात्र अपने आंतरिक राक्षसों, इच्छाओं और मनोवैज्ञानिक संघर्षों से जूझते हैं। यह एक साहित्यिक कृति है जो बातचीत और टकराव के माध्यम से मानव स्वभाव की जटिलताओं को उजागर करती है।

इस अध्ययन में, हम 'कांच के पारें' की मनोवैज्ञानिक बारीकियों को समझने की यात्रा पर निकल पड़े हैं। हम उन संवादों में गहराई से उतरते हैं जो पात्रों के आंतरिक विचारों, भावनाओं और मानसिक स्थिति को प्रकट करते हैं। हम जांच करते हैं कि उपन्यास मानव व्यवहार की जटिलताओं और मानसिक कल्याण पर सामाजिक गतिशीलता के प्रभाव को कैसे चित्रित करता है।

जैसे-जैसे हम पात्रों के दिमाग के जटिल परिदृश्य से गुजरते हैं, हमें संवाद, रिश्तों और मानसिक स्वास्थ्य के बीच परस्पर क्रिया में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। 'कांच के पारें' एक दर्पण के रूप में कार्य करता है जो न केवल पात्रों के अनुभवों को बल्कि हमारे अनुभवों को भी

दर्शाता है, जो हमें मानव मानस की गहराई और हमारे जीवन में मानसिक स्वास्थ्य के महत्व पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। इस अन्वेषण के माध्यम से, हम आत्म-खोज और सहानुभूति के मार्ग को रोशन करने के लिए साहित्य की शक्ति को उजागर करते हैं, जिससे यह साहित्यिक उत्साही और मानसिक स्वास्थ्य अधिवक्ताओं दोनों के लिए एक मूल्यवान संसाधन बन जाता है।

व्यक्ति और समाज के बीच संघर्ष: एक गहन मनोवैज्ञानिक अध्ययन : व्यक्ति और समाज के बीच संघर्ष साहित्य में एक शाश्वत विषय और मनोवैज्ञानिक अन्वेषण का एक गहन विषय है। यह इस बात की जटिल गतिशीलता पर प्रकाश डालता है कि व्यक्ति सामाजिक मानदंडों और अपेक्षाओं के बड़े ढांचे के भीतर अपनी आंतरिक इच्छाओं, आकांक्षाओं और पहचानों को कैसे नेविगेट करते हैं।

यह संघर्ष अक्सर तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने और सामाजिक मानकों के अनुरूप होने के बीच तनाव से जूझते हैं। यह व्यक्तिगत स्वायत्तता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक संहिताओं के प्रभाव की जटिल परस्पर क्रिया को छूता है। सामाजिक स्वीकृति के साथ अपनी प्रामाणिकता को संतुलित करने का संघर्ष एक मनोवैज्ञानिक यात्रा है जिसे कई व्यक्ति शुरू करते हैं।

विशेष रूप से, हिंदी साहित्य ने इस संघर्ष पर प्रकाश डालने वाली कहानियों की एक समृद्ध टेपेस्ट्री पेश की है। उपन्यासों, लघु कथाओं और कविताओं में ऐसे पात्रों को चित्रित किया गया है जो व्यक्तिगत विकास और आत्म-अभिव्यक्ति की लालसा रखते हुए परंपरा और सामाजिक भूमिकाओं का पालन करने की दुविधा का सामना करते हैं। इन साहित्यिक कृतियों के माध्यम से, पाठकों को मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल, आंतरिक संघर्ष और भावनात्मक लड़ाइयों के बारे में जानकारी मिलती है जो व्यक्ति समाज की मांगों को पूरा करते समय अनुभव करते हैं।

जैसे-जैसे हम इस मनोवैज्ञानिक अन्वेषण में गहराई से उतरते हैं, हमें पता चलता है कि व्यक्ति और समाज के बीच संघर्ष कोई द्विआधारी विरोध नहीं है बल्कि अनुभवों का एक जटिल स्पेक्ट्रम है। यह एक ऐसी दुनिया में पहचान, प्रामाणिकता और खुशी की खोज के बारे में सवाल उठाता है जहां सामाजिक अपेक्षाएं अक्सर व्यक्तिगत आकांक्षाओं से टकराती हैं। इस संघर्ष को समझना न केवल एक साहित्यिक प्रयास है बल्कि मानव मनोविज्ञान और आत्म-खोज और आत्म-स्वीकृति की शाश्वत खोज का गहन अध्ययन भी है।

भावनाओं की गहराई: एक गहन अन्वेषण : भावनाओं की खोज, उनकी पेचीदगियाँ और मानव अनुभव पर उनका गहरा प्रभाव साहित्य और मनोविज्ञान में एक केंद्रीय विषय है। भावनाएँ मानव आत्मा की कच्ची, अनफ़िल्टर्ड अभिव्यक्तियाँ हैं, और उनकी गहराई में जाने से हमारी साझा मानवता का सार पता चलता है।

भावनाओं की गहराई एक व्यापक स्पेक्ट्रम को समाहित करती है, जिसमें गहन खुशी से लेकर तीव्र दुःख तक, असीम प्रेम से लेकर तीव्र क्रोध तक शामिल है। साहित्य, कविता और कला उस कैनवास के रूप में काम करते हैं जिस पर इन भावनाओं को चित्रित किया जाता है, जो हमें पात्रों और उनकी भावनाओं से आंतरिक स्तर पर जुड़ने की अनुमति देता है।

हिंदी साहित्य, विशेष रूप से, भावनाओं की समृद्धि को चित्रित करने में उत्कृष्ट रहा है। यह मानवीय रिश्तों की जटिलताओं, मानव हृदय की उथल-पुथल और व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवों की बारीकियों पर प्रकाश डालता है। राधा-कृष्ण की भक्ति में प्रेम के उल्लास से लेकर हीर-रांझा की गाथा में विरह की उदासी तक, हिंदी साहित्य मानवीय भावनाओं के संपूर्ण स्पेक्ट्रम को दर्शाता है।

इस अन्वेषण में, हम पात्रों के दिल और दिमाग में यात्रा करते हैं, उनकी खुशियों, दुखों, आशाओं और भय का अनुभव करते हैं। हम मानवीय स्थिति और समय, संस्कृति और भाषा से परे भावनाओं की सार्वभौमिकता की गहरी समझ प्राप्त करते हैं।

इसके अलावा, भावनाओं की गहराई में उतरने से हमें मानव व्यवहार की मनोवैज्ञानिक जटिलताओं की सराहना करने की अनुमति मिलती है। इससे पता चलता है कि भावनाएँ हमारे निर्णयों, रिश्तों और हमारे आसपास की दुनिया की धारणाओं को कैसे आकार देती हैं। यह हमें याद दिलाता

है कि, हमारी विविध पृष्ठभूमि और अनुभवों के तहत, हम भावनात्मक जटिलता का एक सामान्य धागा साझा करते हैं जो हमें इंसान के रूप में बांधता है।

व्यक्तिगत विकासः आत्म-संवर्धन की यात्रा : व्यक्तिगत विकास, जिसे अक्सर आत्म-सुधार या आत्म-संवर्धन के रूप में जाना जाता है, एक अंतर्निहित मानवीय खोज है जो हमारे मनोवैज्ञानिक ढांचे में गहराई से अंतर्निहित है। यह व्यक्तियों की खुद को बेहतर बनाने, अपने जीवन को बेहतर बनाने और अपनी पूरी क्षमता तक पहुँचने की यात्रा का प्रतिनिधित्व करता है। यह अवधारणा भौगोलिक, सांस्कृतिक और लौकिक सीमाओं से परे है, जो जीवन के सभी क्षेत्रों के लोगों के साथ प्रतिध्वनित होती है।

इसके मूल में, व्यक्तिगत विकास एक मनोवैज्ञानिक प्रयास है। इसमें आत्म-जागरूकता, आत्मनिरीक्षण और निरंतर सीखने और विकास के प्रति प्रतिबद्धता शामिल है। इसमें किसी के ज्ञान, कौशल और क्षमताओं का विस्तार शामिल है, लेकिन यह केवल अधिग्रहण से कहीं आगे तक जाता है। व्यक्तिगत विकास में लचीलापन, अनुकूलनशीलता और भावनात्मक बुद्धिमत्ता जैसे गुणों का विकास शामिल है, जिसका किसी व्यक्ति की भलाई और सफलता पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

हिंदी साहित्य में अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्तिगत विकास का जश्न मनाने की एक समृद्ध परंपरा है। हिंदी उपन्यासों, कहानियों और कविताओं के पात्र अक्सर आत्म-खोज, आत्म-बोध और परिवर्तन की यात्रा पर निकलते हैं। ये साहित्यिक यात्राएँ व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रतिबिंबित करती हैं क्योंकि वे चुनौतियों का सामना करते हैं, बाधाओं को दूर करते हैं और स्वयं के बेहतर संस्करण में विकसित होते हैं।

व्यक्तिगत विकास केवल व्यक्तिगत लाभ के बारे में नहीं है; यह सामाजिक प्रगति में भी योगदान देता है। जब व्यक्तिआत्म-संवर्धन के लिए प्रयास करते हैं, तो वे अपने समुदायों और समग्र विश्व में सकारात्मक योगदान देने में अधिक सक्षम हो जाते हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक विकास का यह अंतर्संबंध इस अवधारणा की मनोवैज्ञानिक गहराई को रेखांकित करता है।

अंत में, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य की हमारी खोज ने विषयों और अंतर्दृष्टि की एक समृद्ध टेपेस्ट्री का खुलासा किया है जो मानवीय अनुभव से मेल खाती है। हमने व्यक्तिगत स्वायत्तता और सामाजिक अपेक्षाओं के गहन अंतर्संबंध को पहचानते हुए, व्यक्तिऔर समाज के बीच संघर्ष की पेचीदगियों की गहराई से जांच की। हमने मानवीय भावनाओं की गहराइयों का पता लगाया, इस बात की सराहना करते हुए कि कैसे साहित्य हमारी भावनात्मक जटिलताओं और हमारी भावनाओं की सार्वभौमिकता के दर्पण के रूप में कार्य करता है। हमने व्यक्तिगत विकास की यात्रा शुरू की, यह समझते हुए कि आत्म-संवर्धन की खोज मानव मानस का एक अंतर्निहित हिस्सा है।

हिंदी साहित्य, अपने विविध आख्यानों और पात्रों के साथ, मनोवैज्ञानिक अन्वेषण का खजाना साबित हुआ है। यह मानवीय स्थिति में एक खिड़की प्रदान करता है, पाठकों और विद्वानों को सामाजिक ढांचे के भीतर व्यक्तियों की प्रेरणाओं, संघर्षों और विजयों का विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करता है।

इसके अलावा, हिंदी साहित्य की मनोवैज्ञानिक बारीकियों के माध्यम से हमारी यात्रा इस बात पर जोर देती है कि साहित्य केवल मनोरंजन का स्रोत नहीं है, बल्कि आत्म-चिंतन, सहानुभूति और व्यक्तिगत विकास का एक गहरा साधन है। यह हमें मानव मानस की जटिलताओं के बारे में सिखाता है, समझ को बढ़ावा देता है और हमें अपनी साझा मानवता को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है।

जैसे ही हम इस अन्वेषण को समाप्त करते हैं, हम मानते हैं कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से साहित्य का अध्ययन एक सतत प्रयास है। यह हमें याद दिलाता है कि लिखित शब्द में समय और स्थान को पार करने, संस्कृतियों और पीढ़ियों को जोड़ने और मानव आत्मा की गहराई में कालातीत अंतर्दृष्टि प्रदान करने की शक्तिहै।

सहायक प्राध्यापक, बी.एड. &
एम.एड. स्पेशियल एज्युकेशन (आई.डी.),
एम.बी. पटेल कॉलेज ऑफ़ एज्युकेशन,
सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
वल्लभ विद्यानगर, आणंद, गुजरात - 388120

विज्ञान के क्षेत्र में शिक्षा एवं शिक्षण में डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपकरणों का उपयोग : एक समीक्षा

औशिमा माथुर

शोध सारांश : आज की दुनिया में, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) सर्वव्यापी है और इसे जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा माना जाता है। डिजिटल उपकरणों (इलेक्ट्रॉनिक और विशेष रूप से कम्प्यूटरीकृत प्रौद्योगिकियों द्वारा विशेषता वाले उपकरण) के उपयोग ने शिक्षा के क्षेत्र सहित जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित और बदल दिया है। डिजिटल उपकरणों के प्रकार और कक्षा में उनके उपयोग के लाभों, विज्ञान शिक्षा में छात्रों के सीखने को बेहतर बनाने में उनकी भूमिका, इन डिजिटल शिक्षण उपकरणों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए शिक्षकों द्वारा आवश्यक ज्ञान और आने वाली चुनौतियों पर ध्यान केंद्रित किया है। अध्ययन का उद्देश्य मौजूदा बाहरी वातावरण के कारकों के प्रभाव के आधार पर विज्ञान के जगत में शिक्षा के सूचनाकरण में डिजिटल और बुद्धिमान प्रौद्योगिकियों के एकीकरण के प्रबंधन के लिए परिदृश्यों का विश्लेषण, व्यवस्थित और तैयार करना है। यह दिखाया गया कि विज्ञान जगत में डिजिटल परिवर्तन व्यावसायिक गतिविधियों के सभी पहलुओं में डिजिटल प्रौद्योगिकी एकीकरण की एक प्रक्रिया है, जिसके लिए विज्ञान प्रौद्योगिकी, संस्कृति, संचालन और नए उत्पादों और सेवाओं के निर्माण के सिद्धांतों में मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता होती है। विज्ञान शिक्षा के सूचनाकरण में डिजिटल और बुद्धिमान प्रौद्योगिकियों के सिमुलेशन मॉडल प्रस्तावित हैं। शिक्षा प्रणाली के विकास के लिए संभावित परिदृश्यों का वर्णन किया गया है: जड़त्वीय और परिवर्तनकारी। एक नया व्यवहार्य आधार परिदृश्य प्रस्तावित है, जिसे अपसारी, या स्कूल कमजोर पड़ने वाला परिदृश्य कहा जा सकता है। यह दर्शाया गया है कि ये तीन सामान्य परिदृश्य आज शिक्षा के सूचनाकरण में हो रहे परिवर्तनों में डिजिटल और बौद्धिक प्रौद्योगिकियों की संभावित जगह और भूमिका को दर्शाते हैं।

शब्द कुंजी- विज्ञान, शिक्षण, डिजिटल, उपकरणों, उपयोग

भूमिका : सतत विकास में सामाजिक कल्याण शामिल है, जो शिक्षा पर निर्भर करता है। सूचना प्रौद्योगिकी साझा ज्ञान फैलाने के लिए उभरी है और शिक्षा सुधारों के पीछे एक प्राथमिक प्रेरक शक्ति है। मोबाइल डिवाइस, स्मार्टबोर्ड, एमओओसी, टैबलेट, लैपटॉप, सिमुलेशन, डायनेमिक विजुअलाइज़ेशन और आभासी प्रयोगशालाओं जैसे नए प्रौद्योगिकी-सहायता प्राप्त शिक्षण उपकरणों की शुरूआत ने स्कूलों और संस्थानों में शिक्षा को बदल दिया है। इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) युवा मस्तिष्क को शिक्षित करने के सबसे किफायती तरीकों में से एक साबित हुआ है।"[1] यह हर किसी के लिए विश्व स्तरीय सीखने के अनुभव को एकीकृत करने के लिए एक मजबूत तंत्र भी है। विज्ञान के क्षेत्र में शैक्षिक प्रौद्योगिकी व्यवसाय उन व्यक्तियों के लिए शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने के लिए लगातार नए समाधान बनाने का प्रयास कर रहे हैं जो पर्याप्त शैक्षिक सुविधाएँ प्राप्त नहीं कर सकते हैं। एक शिक्षण उपकरण के रूप में सोशल मीडिया ने एक लंबा सफर तय किया है। बड़ी संख्या में शिक्षक और छात्र समग्र ई-लर्निंग अनुभव के एक आवश्यक तत्व के रूप में सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। यह इन दिनों महत्वपूर्ण विषयों पर जानकारी के आदान-प्रदान के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान है। कहीं भी, किसी भी समय जानकारी संप्रेषित करने की क्षमता के अलावा, सोशल मीडिया साइटें सामाजिक गतिविधियों और संभवतः नई नौकरियों को स्थापित करने के लिए नेटवर्किंग संभावनाएँ पैदा करने का एक शानदार स्रोत भी हैं ।

पारंपरिक कक्षा निर्देश तत्काल सीखने का माहौल, तेज़ मूल्यांकन और अधिक सहभागिता प्रदान करने में विफल रहते हैं। इसके विपरीत, डिजिटल शिक्षण उपकरण और प्रौद्योगिकी इस शून्य को भरते हैं। ऐसी प्रौद्योगिकियाँ जो कुछ दक्षताएँ प्रदान करती हैं, वे पारंपरिक शिक्षण पद्धतियों से बेजोड़ हैं। स्मार्टफोन और अन्य वायरलेस प्रौद्योगिकी उपकरणों के आम जनता के बीच लोकप्रिय होने के साथ, यह केवल समझ में आता है कि स्कूल और शैक्षणिक संस्थान कक्षा में प्रौद्योगिकी को शामिल करके उनका कुशल उपयोग करें। दरअसल, आज की तकनीक की अनुकूलन क्षमता और गैर-दखल देने वाला चरित्र अगली पीढ़ी के लिए सीखने को और अधिक आकर्षक बनाता है। हालाँकि, शुरुआत में इसे प्रबंधित करने के लिए यह एक कठिन तकनीक हो सकती है क्योंकि पारंपरिक प्रशिक्षक स्कूल में समकालीन तकनीक और गैजेट्स को शामिल करने में झिझकते हैं, उन्हें एक बुद्धिमान शिक्षण सहायता के

बजाय एक व्याकुलता के रूप में देखते हैं । एक ऑनलाइन कक्षा कैलेंडर, जहाँ हम कक्षा कार्यक्रम, असाइनमेंट कार्यक्रम, क्षेत्र भ्रमण, वक्ता कार्यक्रम, परीक्षा कार्यक्रम या सेमेस्टर ब्रेक प्रदर्शित कर सकते हैं, छात्रों को तदनुसार योजना बनाने में मदद करेगा। छात्र प्रतिक्रिया प्रणालियाँ, जैसे कि स्मार्टफोन और क्लिकर डिवाइस, शिक्षकों को प्रस्तुत सामग्री के बारे में छात्रों की सीख को शीघ्रता से निर्धारित करने के लिए एक त्वरित और आसान तकनीक प्रदान करती हैं और क्या अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म और डिजिटल पाठ्यपुस्तकों ने शैक्षिक संसाधनों को कम लागत पर छात्रों के लिए अधिक सुलभ बना दिया है, साथ ही यह पर्यावरण के लिए भी बेहतर है। इसके परिणामस्वरूप भौतिक प्रतियों और कागज की मांग में कमी आई है।"[2]

विज्ञान शिक्षा में डिजिटल उपकरणों की भूमिका: "बराक (2011) बताते हैं कि विज्ञान एक बहुत ही व्यावहारिक विषय है जिसमें 'चीजें करना' शामिल है (पृष्ठ 88)"[3]। इसमें अवलोकन करना, मापना, संचार करना और चर्चा करना, चीजों को आज़माना, जांच करना, चीजों को संभालना, देखना और निगरानी करना और परिणामों को रिकॉर्ड करना शामिल है। हालाँकि, विज्ञान जितना व्यावहारिक अनुशासन है, उतना ही सैद्धांतिक विषय भी है। इसमें आलोचनात्मक सोच, अनुमान लगाना, परिकल्पना करना, सिद्धांत बनाना, अनुकरण करना और मॉडलिंग करना शामिल है। इसमें अमूर्तताएँ, कठिन विचार और सैद्धांतिक इकाइयां भी शामिल हैं जिन्हें देखा या संभाला नहीं जा सकता। निम्नलिखित चर्चा इस बात पर केंद्रित है कि डिजिटल उपकरण विज्ञान सीखने के व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों पहलुओं में कैसे मदद करते हैं।

विज्ञान में रचनात्मक शिक्षा का समर्थन करने के लिए डिजिटल उपकरणों का उपयोग करना : रचनावादी शिक्षा, या 'रचनावाद', सीखने का एक वैचारिक दृष्टिकोण है जो जीन पियागेट के बाल विकास सिद्धांतों पर आधारित है। रचनावाद सीखने को एक सक्रिय प्रक्रिया के रूप में देखता है जिसमें छात्र निष्क्रिय रूप से जानकारी लेने के बजाय अपने स्वयं के ज्ञान का निर्माण करते हैं। इसमें उन गतिविधियों को निष्पादित करके शिक्षार्थियों के पहले से मौजूद ज्ञान का निर्माण करना शामिल है जिनके लिए खोजी परिप्रेक्ष्य के साथ उच्च क्रम के सोच कौशल की आवश्यकता होती है । इस सिद्धांत के अनुसार, छात्र कार्य करके, खोज करके और जाँच करके सीखते हैं; अपने अनुभवों से नया ज्ञान प्राप्त करना और इसे अपनी मौजूदा वैचारिक समझ में आत्मसात करना। रचनावादी मॉडल विज्ञान शिक्षा के केंद्र में है, क्योंकि छात्रों को विज्ञान की सार्थक समझ हासिल करनी चाहिए, न केवल ज्ञान के एक समूह के रूप में, बल्कि परिवेश की समझ बनाने के लिए भी। डिजिटल शिक्षण उपकरण छात्रों को वैज्ञानिक अवधारणाओं के प्रतिनिधित्व में हेरफेर करने की अनुमति देते हैं, जिससे उन्हें वास्तविक जीवन में सैद्धांतिक दुनिया के बारे में अपने विचारों की जांच और परीक्षण करने की अनुमति मिलती है, इस प्रकार पूछताछ मॉडल और रचनात्मक शिक्षा का समर्थन होता है। विज्ञान शिक्षण में डिजिटल उपकरणों का उपयोग छात्रों को सोचने के लिए प्रोत्साहित करता है और उनके तर्क कौशल को बढ़ाता है; उन्हें अपने पूर्व ज्ञान को आगे बढ़ाने या कभी-कभी इसे चुनौती देने के लिए प्राप्त नए ज्ञान का उपयोग करने में सक्षम बनाना। यह छात्रों को सही वैज्ञानिक अवधारणाएँ विकसित करने और ग़लतफ़हमियों का प्रतिकार करने में सक्षम बनाता है, जिससे विज्ञान शिक्षण समृद्ध होता है।

विज्ञान शिक्षकों के लिए संसाधन : नीचे मैंने विज्ञान शिक्षकों के लिए कुछ ऑनलाइन संसाधनों का एक संकलन बनाया है, जो वर्णानुक्रम में व्यवस्थित है। ये संसाधन विज्ञान शिक्षण और सीखने में सहायता के लिए विज्ञान सामग्री को पाठ, वीडियो, सिमुलेशन, इंटरैक्टिव गतिविधियों आदि जैसे विभिन्न स्वरूपों में प्रस्तुत करते हैं। हालाँकि इनमें से अधिकांश संसाधन उपयोग के लिए निःशुल्क हैं, कुछ सशुल्क संसाधन भी शामिल किए गए हैं।

एबीसी शिक्षा: इस साइट में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के लिए शैक्षिक संसाधन शामिल हैं। इसमें ऑस्ट्रेलियाई पाठ्यक्रम से जुड़े वीडियो, गेम और अन्य संसाधन शामिल हैं।

बीबीसी बिटसाइज़: बीबीसी बिटसाइज़ एक मुफ़्त ऑनलाइन अध्ययन सहायता संसाधन है जिसे सीखने, पुनरीक्षण और होमवर्क में मदद करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। बिटसाइज़ 5 से 16अ आयु वर्ग के विद्यार्थियों को स्कूल के विभिन्न विषयों में सहायता प्रदान करता है। इस संसाधन में वीडियो, इंटरैक्टिव गतिविधियों और गेम सहित विभिन्न प्रारूपों में प्रस्तुत सामग्री शामिल है।

बायोएड ऑनलाइन: बायोएड ऑनलाइन उच्च गुणवत्ता वाले पाठ, शिक्षक गाइड, स्लाइड, वीडियो और पूरक सामग्री प्रदान करता है जिन्हें विज्ञान कक्षा में उपयोग के लिए डाउनलोड किया जा सकता है। सामग्रियों को प्रारूप, विषय और ग्रेड स्तर के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है, जिससे छात्रों के लिए उपयुक्त सामग्री का पता लगाना आसान हो जाता है।"[4]

विज्ञान कक्षाओं में शिक्षकों द्वारा डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग और पारंपरिक ज्ञान परिप्रेक्ष्य : इस शोध विषय से पता चला है कि कैसे शिक्षकों के ज्ञान की कमी शिक्षण में प्रौद्योगिकी को एकीकृत करने में बाधा है। इस अध्ययन में, यह सवाल नहीं था कि प्रौद्योगिकी को एकीकृत किया जाए या नहीं, क्योंकि आधिकारिक तौर पर यह निर्णय लिया गया था कि शिक्षण डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग पर आधारित होना चाहिए। जैसा कि अवलोकनों के दौरान देखा गया और साक्षात्कारों में पुष्टि की गई, भाग लेने वाले दो शिक्षक प्रौद्योगिकी को संभालने में माहिर थे। शिक्षकों में डिजिटल तकनीक का उपयोग करने में उच्च आत्म-प्रभावकारिता है। ऐसा तब है जबकि कार्यान्वयन काफी हद तक व्यक्तिपर निर्भर है । इस अध्ययन में शिक्षकों ने यह भी दावा किया कि उन्होंने किसी भी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में भाग नहीं लिया और यह उनपर निर्भर था कि वे डिजिटल प्रौद्योगिकी को कैसे एकीकृत करते हैं। कुछ हद तक, उन्होंने एक-दूसरे का समर्थन करके, या ऑनलाइन मदद पाकर समस्या का समाधान किया (जैसा कि पहले के अध्ययनों में बताया गया था ।

शोध विधि : विचाराधीन मुद्दों की प्रासंगिकता ने आयोजित शोध विषय की पसंद, उसके लक्ष्य का निर्धारण और उपयोग की जाने वाली विधियों पर प्रभाव को निर्धारित किया। इस प्रकार, अध्ययन का उद्देश्य मौजूदा बाहरी वातावरण को प्रभावित करने वाले कारकों के आधार पर शिक्षा के सूचनाकरण में डिजिटल और बौद्धिक प्रौद्योगिकियों के एकीकरण प्रबंधन परिदृश्यों का विश्लेषण, व्यवस्थितकरण और निर्माण करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति निम्नलिखित कार्यों को हल करके की जाती हैः विज्ञान शैक्षिक प्रणाली में डिजिटल और बुद्धिमान प्रौद्योगिकियों की शुरूआत के मुद्दे पर वैज्ञानिक प्रकाशनों का विश्लेषण।/ विज्ञान शिक्षा प्रणाली के विकास का वर्णन करने के लिए परिदृश्यों की प्रस्तुति।/ विज्ञान शिक्षा के डिजिटल परिवर्तन के तीन परिदृश्यों का विकास। /विज्ञान शिक्षा के सूचनाकरण में डिजिटल और बुद्धिमान प्रौद्योगिकियों के एकीकरण के प्रबंधन के लिए प्रस्तावित परिदृश्यों का औचित्य।/अध्ययन की समस्याओं को हल करने के लिए द्वंद्वात्मक तर्क के सिद्धांत, तर्क और सैद्धांतिक की एकता, सिस्टम विश्लेषण, समस्या-लक्ष्य ई दृष्टिकोण, वर्गीकरण के तरीके और विशेषज्ञ मूल्यांकन का उपयोग किया गया था।[5]

परिणाम : हाल ही में , शिक्षा प्रणाली के कम्प्यूटरीकरण और सूचनाकरण की प्रक्रिया में जड़त्वीय परिवर्तन, एक बंद शैक्षिक वास्तुकला और कक्षा-पाठ प्रणाली के कालक्रम का प्रभुत्व था, जो शैक्षिक प्रक्रिया के पारंपरिक संगठन का समर्थन करता था। विज्ञान शिक्षा के सूचनाकरण में डिजिटल और बुद्धिमान प्रौद्योगिकियों के एकीकरण का परिचय और उपयोग प्रतिस्थापन और/या सुधार के स्तर पर हुआ, जिससे शैक्षिक परिणामों में उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ।

निष्कर्षः- ये उदाहरण दिखाते हैं कि अनुसंधान और विकास सहित विज्ञान शिक्षा के डिजिटल परिवर्तन पर काम का दायरा दुनिया भर में बहुत व्यापक है। हालाँकि, शैक्षणिक अनुसंधान बेहद कम वित्त पोषित है। बहुत कम मूल्यवान विकास शैक्षिक संगठनों के कार्य के नए मॉडल का आधार बन सकते हैं। प्रायोगिक कार्य शैक्षिक संगठनों द्वारा, एक नियम के रूप में, बुनियादी गतिविधि निधि और स्वैच्छिक दान की कीमत पर किया जाता है। इसलिए, व्यापक अध्ययन और अनुसंधान और विकास परिणामों का उचित उपयोग शैक्षिक प्रणाली के सफल डिजिटल परिवर्तन के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन बन सकता है। एक और महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि उन्नत अनुसंधान और विकास के बिना परिवर्तनकारी परिदृश्य असंभव है।

संदर्भ-सूची

1. Abdullahi, H. (2014). The role of ICT in teaching science education in schools. International Letters of Social and Humanistic Sciences, 19, 217–223. https://doi.org/10.18052/www.scipress.com/ILSHS.19.217
2. Al-Rsa'i, M. S. (2013). Promoting scientific literacy by using ICT in science teaching. International Education Studies, 6(9), 175–186. https://doi.org/10.5539/ies.v6n9p175
3. Barak, M., Ashkar, T., & Dori, Y. J. (2011). Learning science via animated movies: Its effect on students' thinking and motivation. Computers & Education, 56(3), 839–846. https://doi.org/10.1016/j.compedu.2010.10.025
4. Escueta, M., Quan, V., Nickow, A. J., & Oreopoulos, P. (2017). Education technology: An evidence-based review. Retrieved 30 June 2022 from https://ssrn.com/abstract=3031695
5. Tallvid, M. (2015). 1:1 i klassrummet: analyser av en pedagogisk praktik i forandring. Doctoral thesis. Goteborg: Göteborgs universitet.

प्रधानाचार्य,
श्री वेंकेटेश्वरा विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

'पंजाब में हिंदी दशा, दिशा एवं चुनौतियाँ'

डॉ पवन कुमार शर्मा

भाषा आज एक ब्राण्ड बन गई है। पंजाब की स्थिति के अन्तर्गत हिन्दी का ब्राण्ड इतना बड़ा है, विशेषकर पंजाब में हिन्दी का प्रयोग करने वालों की संख्या में द्रुत गति से वृद्धि हुई है। हिन्दी के विकास में पंजाब की भूमिका अग्रणी रही है। आदिकाल से लेकर आधुनिककाल तक हिन्दी का विपुल साहित्य उपलब्ध है। पंजाब में मीडिया, टी.वी., विज्ञापन, समाचार पत्र पठन-पाठन के लिए हिन्दी अपना सहयोग दे रही है। यह हिन्दी भाषा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भारतीय भाषाओं को एक साथ लेकर हम लोग उसके क्रम में विकास करें।

भारत के सिंह द्वारा अमृतसर की भूमिका महत्वपूर्ण है। पंजाब की हुंकार विश्व में दिखाई देती है, फिर यह हिन्दी के क्षेत्र में पीछे कैसे रह सकता है। कुछ समय के लिए ग्रहण तो लग सकता है, कुछ समय के लिए ग्रहण लगने से चीज़ें धूमिल अवश्य हो सकती हैं।
अन्धकार वह जहाँ साहित्य नहीं।/ मूर्दा है वह देश जिसकी निज भाषा नहीं।।

साहित्य और भाषा केवल विचार निनिमय का साधन मात्र नहीं होते, अपितु समाज और संस्कृति का प्रतिबिम्ब होते हैं। हिन्दी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ। इसी प्रकार पंजाबी भाषा का उद्भव भी शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ। यह भारतीय संस्कृति परम्परा की वाहक है। अगर भवन की नींव इतनी सशक्त हो तो महल स्वतः ही विशाल और महत्वपूर्ण, मज़बूत बनता है।

10वीं शताब्दी में विदेशी आक्रान्ताओं का रौद्र रूप पंजाबियों ने झेला। पंजाब वह धरती है, जिसके माध्यम से पहली चोट समाज और संस्कृति पर पड़ी, इसके साथ कार्यालयों और भाईचारे पर पड़ती है। यह सब सहने वाला पंजाब ही पहला प्रदेश रहा। पंजाब की भूमि उर्वर है। इसे धान का कटोरा कहा जाता है। इतने आक्रमण, विध्वंस, जख्मों के बाद भी इस धरती ने साहित्य के माध्यम से कोहिनूर दिए। टैगोर ने भारत को संस्कृतियों का समुद्र कहा है; पंजाब ने सिद्ध किया।

साहित्य की दृष्टि से श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम चिरकाल से स्मरणीय एवं स्तुति के योग्य है। सप्त सिन्धु पंजाब की धरती है, जहाँ वेदों की रचना हुई, ऋचाओं का पठन-पाठन हुआ। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में हिन्दी के अनेक सन्तों की वाणी है। हिन्दी को विपुल साहित्य देने वाला पंजाब रहा, जिसने जीता-जागता समाज, जीवन जीने की कला पंजाब को दी। संस्कृत की मुंह बोलती तस्वीर करतारपुर में आश्रम है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए पंजाब को अपनी कर्म भूमि बनायी। आधुनिक काल के आसपास परतन्त्रता चहुं ओर फैली हुई थी। श्रद्धाराम फिल्लौरी ने हिन्दी प्रचार-प्रसार आरम्भ किया। अध्यापाक पूर्ण सिंह ने छः निबन्ध लिखकर पंजाब का नाम हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया। उद्यशंकर भट्ट, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (उसने कहा था), भीमम साहनी, यशपाल, मोहन राकेश आदि अनेक हिन्दी के कवि, साहित्यकार पंजाब की धरती पर पैदा हुए और हिन्दी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। पंजाब सीमा वृत्ति क्षेत्र होने के कारण पद-दलित होता रहा। पंजाबियों की जुझारु प्रवृत्ति रही है।

पंजाब में आदिकाल से ही हिन्दी भाषा के स्रोत उपलब्ध हैं। डॉ. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने गोरखनाथ की 40 रचनाओं के विषय में बताया है कि "डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय में नाथों के 12 पथों में से तीन का सम्बन्ध पंजाब से माना है। उनके अनुसार नाटेश्वरी पंथ का सम्बन्ध गोरख टीले से, पागल पंथ का अबोहर से तथा गंगानगर पंथ का

गुरदासपुर से था। जालन्धर नाथ जालन्धर में रहे थे।"[1]
"पंजाब में उपलब्ध हिन्दी भक्तिसाहित्य की राम काव्य धारा में हरि जी कृत आदि रामायण, गुरु गोबिन्द सिंह कृत रामावतार, सन्तोख सिंह कृत वाल्मीकि रामायण महत्वपूर्ण है।"[2]
"हिन्दी कहानी लेखन में पंजाब के हिन्दी प्रेमी पीछे नहीं रहे। उपेन्द्रनाथ अश्क मूलतः पंजाबी सभ्यता और संस्कृति से जुड़े रचनाकार है। पंजाब के आदर्शों और संस्कृति को उन्होंने अपने साहित्य में पूर्ण अभिव्यक्ति दी है।"[3] चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (उसने कहा था), महीप सिंह, वीरेन्द्र मेंहदी दता, राकेश वत्स, विनोद शाही, कृष्णा सोबती (सिक्का बदल गया), रवीन्द्र कालिया, सैली बलजीत, सुरेश सेठ आदि ने सराहनीय योगदान दिया एवं हिन्दी कहानी को चरम तक पहुँचाया।
हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में कृमणा सोबती ने पंजाब के सांस्कृतिक मूल्यों को पंजाबी वेशभूषा, भाषा परिवेश को जो चित्रण किया है, वह पढ़ते ही पाठक के मन को उद्धेलित कर देता है।

जगदीश चन्द्र माथुर के (धरती धन न आपना, नरक कुण्ड में वास) उपन्यासों में पीड़ित, दलित, शोषित एवं परिवेशगत परिस्थितियों का चित्रांकन मूल उद्देश्य रहा है। यशपाल (झूठा-सच 1958, देश द्रोही), मोहन राकेश (अन्धेरे बन्द कमरे, न आने वाला कल, अन्तराल), भीष्म साहनी ने तमस उपन्यास में अविभाजित पंजाब के प्रमुख शहर लाहौर और उसके आस-पास के क्षेत्रों को मुख्य विमाय बनाया। निर्मल वर्मा, डॉ. कृष्णा भावुक, मनमोहन सहगल, डॉ. इन्दूबाली, तरसेम गुजराल, सुदर्शन चैपड़ा आदि ने अपना योगदान दिया। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में उपेन्द्रनाथ अश्क, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, चन्द्रशेखर ज्ञान सिंह मान, सुदर्शन, हुकमचन्द राजपाल, नरेन्द्र मोहन, सुभाष रस्तोगी, इन्द्रनाथ मदान, संसार चन्द्र, धर्मपाल मैनी, सुरेश सेठ, मोहन राकेश, आदि ने हिन्दी नाटक विधा को आगे बढ़ाया।
आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में कुमार विकल (एक छोटी सी लड़ाई, रंग खतरे में है निरु पमा दत, मैं बहुत उदास हूँ) का नाम महत्वपूर्ण है। "कुमार विकल ने अपने वर्तमान नक्सलवादी तेवर तक पहुँचने के लिए स्वच्छन्दतावादी अस्तित्ववादी पड़ाव पार किया है। इस प्रकार वक्तव्य अनेक बार कवि के सही पहचान में बाधक होते है।"[4] मोहन सपरा ने पंजाब की संस्कृति को अपने काव्य सृजन में प्रस्तुत किया है। 'आदमी जिन्दा है कविता की कुछ पंक्तियाँ दृमटव्य है। वही आदमी जो अपने शहर से उनके शहर की ओर निकल पड़ा है, बड़ा बेरहम, जालिम और क्रूर हो गया है अब उसे कुछ भी मंजूर नहीं वही सन्नाटे में चीरता हुआ।"[5]
डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी ने 'बातूनी पोस्टर' में आदमी की भटकन और तनाव को दर्शाया है।
"एक दो तीन टूटन, तनाव घुटन अन्तहीन भूलता है अंको का क्रम दूर जैसे कोई चाँदनी में पढ़ता है मील पत्थर"[6] हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में पण्डित श्रद्धाराम फिलौरी एक सफल हस्ताक्षर हैं। कहित का सुधारना अध्यापक पूर्ण सिंह (आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, सच्ची वीरता), संतराम बी.ए., सुरेश सेठ सिरहाने का मीर आदि। इनके अतिरिक्त बालकृष्ण, देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री रघुनन्दन शास्त्री, डॉ. संसार चन्द्र, जयनाथ नलिन, इत्यादि प्रमुख है।

पंजाब में हिन्दी आलोचना का प्रतिनिधित्व बालमुकुन्द गुप्त, माधव प्रसाद मिश्रा तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने किया। 'कांगड़ा कलम' और खासतौर पर मौलूराम की चित्रकला पर उनकी मार्मिक टिप्पणियाँ पंजाब के साथ उनके लगाव को प्रमाणित करती हैं।"[7]

अनुवाद के क्षेत्र में भी पंजाब के हिन्दी प्रेमी साहित्यकार अग्रगण्य रहे हैं। पंजाब के विद्धानों ने संस्कृत, मलयालम, तेलगू, अंग्रेज़ी, अरबी, साहित्य की कृतियों को हिन्दी में अनुदित किया। पंजाब में बीसवीं शती में अनुवाद का कार्य प्रारम्भ हो गया। कालिदास की 'मालविकाग्निमित्र' को चारु देव शास्त्री

ने तथा बी.बी. शर्मा ने 1933 में अनूदित किया। "अंग्रेज़ी के उपन्यास 'ए टेल ऑफ टू सिटिज' का हिन्दी रूपान्तरण विजय चैहान द्वारा किया गया।"[8] हिन्दी भारतीय भाषाओं के बीच क्षेत्रीय भाषाओं की तत्सम शब्दावली प्रशासनिक शब्दावली को संग्रहित करती रही है। इसी प्रकार पंजाबी ने भी लम्बा सफर तय किया है। पंजाबी हिन्दी तुलनात्मक शब्दकोश, वाक्य-विन्यास उलझा हुआ नहीं है। दोनों भाषाएँ समानान्तर चल रही हैं। प्रशासनिक कार्यालयों में हिन्दी राजभाषा के आधार पर विभाजन हुआ। पंजाबी हिन्दी के समानान्तर चल रही हैं, इसके बावजूद भी पंजाब में हिन्दी का प्रयोग, टी.वी. पर हिन्दी का प्रयोग, साहित्यिक रचनाओं में हिन्दी का प्रयोग हो रहा है, इसके बावजूद भी हिन्दी के समक्ष चुनौतियाँ हैं।

बदलते हुए परिदृश्य में उपभोक्तावादी संस्कृति की स्थिति में भाषा को सीखने के पैमाने, अपनी संस्कृति और मूल्यों से दूर होते जा रहे हैं। टैक्नोलॉजी, सूचना प्रौद्योगिकी में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अर्थ प्रधान हो गया है। पंजाब में विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में शोध, हिन्दी अध्यापन कार्य निरन्तर हो रहा है, फिर समस्या की जड़ क्या है? हिन्दी भाषा की लिपि वैज्ञानिक है। असंख्य सर्च इंजन हैं। आज हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर बोलने के सम्बन्ध में कोई समस्या नहीं है। हिन्दी लेखक का वर्चस्व पूरे रामट्र पर छाया हुआ है। आज युवा वर्ग विदेश गमन की ओर आकर्षित है। भाषा जिसने हमें मर्यादाएं सिखाईं। हिन्दी में रोज़गार की संभावना में कोई कमी नहीं, अपार सभावनाएँ हैं।

आज मौल संस्कृति हमें प्रभावित कर रही है। सांस्कृतिक समन्वय को अपनी चेतना में पंजाबी संस्कृति, हिन्दी संस्कृति में कोई अन्तर नहीं है। दोनों प्रान्तीय नजदीकी भाषाएँ हैं; प्रश्न यह है कि अलग कैसे हो गई। हमने कहीं न कहीं अपना इतिहास बोध खो दिया, शब्द शेष रह गये। कॉलेज़ों में हिन्दी, ग्रामीण समाज में पंजाबी, शहरी समाज में हिन्दी का प्रयोग सांस्कृतिक सामाजिक स्तर के अन्तर्गत हो रहा है।

निष्कर्षतः किसी भी समाज की सभ्यता और संस्कृति के उत्थान एवं पतन में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। भाषा किसी भी समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है। पंजाब में हिन्दी आदिकाल से ही अस्तित्व में रही है। पंजाब में हिन्दी ने विकास के चरम को छुआ है। फिर भी इसके समक्ष कुछ चुनौनियाँ हैं, जिनके विषय में हमें चिन्तन करके समाधान खोजना होगा।

सन्दर्भ

1. पंजाब का हिन्दी साहित्य - मनमोहन सहगल, लीना पब्लिकेशन, पटियाला, पृ. 002
2. पंजाब का हिन्दी साहित्य एवं चिन्तन - डॉ. शैलजा, प्रज्ञा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2022, पृ. 199
3. पंजाब का हिन्दी साहित्य एवं चिन्तन - डॉ. शैलजा, प्रज्ञा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2022, पृ. 78
4. पंजाब का हिन्दी साहित्य का इतिहास दृ-डॉ. हुकम चन्द राजपाल, पृ. 61
5. आदमी जिन्दा है दृ मोहन सपरा, आस्था प्रकाशन, नकोदर, 1987, पृ. 94
6. कविवर हरमहेन्द्र सिंह बेदी - रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 26
7. पंजाब का हिन्दी साहित्य का इतिहास आधुनिक काल - डॉ. हुकम चन्द राजपाल, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, 2001, पृ. 222
8. पंजाब का हिन्दी साहित्य और प्रमुख चिन्तन - डॉ. शैलजा, प्रज्ञा प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 148

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
हिंदू कन्या महाविद्यालय, धारीवाल

नरेश सक्सेना की पारिस्थितिक सोच : 'एक वृक्ष भी बचा रहे' कविता के विशेष संदर्भ में

षिजित के के

कविता अपनी लय और ध्वन्यात्मकता के कारण सुंदर मानी जाती है । इसमें भावनाओं को जागृत करने की अद्भुत क्षमता है। इससे जो आनंद मिलता है वह हमें एक बेहतर इंसान बनाता है। एक बेहतर इंसान ही बेहतर समाज का निर्माण कर सकता है । प्रत्येक लेखक अपने पाठकों को सच्चा इंसान बनाने के लिए साहित्य का सृजन करता है। सक्सेनाजी इस श्रेणी में आनेवाले साहित्यकार है। अपने विचारों को पाठकों तक आसानी से पहुँचाने के लिए उन्होंने छंदों का प्रयोग किया । उनके मुताबिक़ अगर कोई कविता हमारे दिल को छूती नहीं तो उससे कोई फ़ायदा नहीं है। उन्होंने विषयवस्तु को आसानी से संप्रेषित करने के लिए ऐसे संकेतों पर बल दिया।

आज वैश्वीकरण का युग चल रहा है। मानव समूह निरंतर विकास की ओर अग्रसर है । लेकिन दिन-ब-दिन प्रकृति विकास की आग में जलती नज़र आ रही है। इसलिए पर्यावरण आज के सन्दर्भ में दहकती विषय बन गया है। हम प्रकृति के गोद में बड़े हुए हैं । लेकिन इस सच्चाई को जानते हुए भी मनुष्य प्रकृति का दोहन करते आ रहे हैं। हम इसके मानस को अपने हाथों से निचोड़ रहे हैं । ऐसे अवसरों पर सक्सेना जी ने अपनी कई कविताओं के माध्यम से जनता को लगातार जागरूक करने का प्रयास किया है। उनका बचपन जंगल के माहौल में बीता। अतः उसी समय से आपका प्रकृति से गहरा सम्बन्ध बरकरार रहा। कवि के लिए प्रकृति उसके अस्तित्व का अभिन्न अंग है। इसलिए यह विषय लगातार उनके हर एक लेखन में दृश्य एवं अदृश्य दोनों रूपों में निरंतर प्रतिबिंबित होता है। सक्सेना जी सदैव अपनी सराहनीय लेखन कौशल से जनता को काफी हद तक प्रभावित करने में सफल रहे हैं।

'समुद्र पर बारिश हो रही है' सक्सेना जी का सर्वश्रेष्ठ काव्य संग्रह है। लेखक ने इस संग्रह की कविताएँ तब लिखना शुरू किया जब हरिशंकर परसाई, ज्ञानरंजन, विनोद कुमार शुक्ल जैसे लेखक उनके साथ जबलपुर में थे। इसमें कुल 94 कविताएँ हैं, जिनमें उन्होंने जीवन के विभिन्न सन्दर्भों को चित्रित करने का प्रयास किया है। इन कविताओं में उन्होंने सरल भाषा का प्रयोग किया है जो पाठकों को अपने परिवेश से जोड़ने में सहायक है। इस काव्य संग्रह की एक प्रसिद्ध कविता है 'एक वृक्ष भी बचा रहे'। इस कविता को पढ़ते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि सक्सेना जी में समय की धड़कन और सांसों को पहचानने की अद्भुत क्षमता है। कवि ने यह कविता साधारण जन भाषा में लिखी है, क्योंकि उनका उद्देश्य पाठकों को आज के परिप्रेक्ष्य में पेड़ों के महत्व के बारे में जानकारी देना है। आजकल लोग बाहरी दुनिया की चमक-दमक में अंधे हो गए हैं। ज़िंदगी की दौड़ में वह अपनी जड़ें भूल गया है। वे इस सत्य को समझने का प्रयास नहीं करते कि इन जड़ों में असमानता के कारण मानव समूह का अस्तित्व ही खतरे में पड़ने की संभावना है। कवि प्रतीकात्मक रूप से लिखते हैं - "अंतिम समय में जब कोई नहीं जाएगा साथ/एक वृक्ष जाएगा/अपनी गौरैयों-गिलहरियों से बिछुड़कर/ साथ जाएगा एक वृक्ष।"[1]

यहाँ कवि यह बताना चाहते हैं कि मनुष्य और प्रकृति का अटूट रिश्ता जन्म से ही चलता रहता है। अंतिम यात्रा के अवसर पर हमें पेड़ के टुकड़ों के साथ

जला दिया जाता है। लेकिन जन्म और मृत्यु के बीच कहीं न कहीं प्रकृति के साथ मनुष्य के सदियों पुराने संबंध में दरार आ गयी है। वस्तुतः यह मानवीय परिवर्तन उत्तराधुनिक समाज का उपोत्पाद है। आज मनुष्य अधिक स्वार्थी हो गया है। वह मशीनी जीवन के चक्कर में फंसा हुआ है। आजकल कोमल भावनाओं का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। मनुष्य प्रकृति को केवल उसे जीवित रखने में मदद करनेवाली सामग्री के रूप में देखता है। इसलिए हम यह सोचने के लिए कभी तैयार नहीं होते कि पेड़ों पर कई तरह के जीव-जंतु रहते हैं, उनमें कई जानवरों की बस्तियाँ हो सकती हैं। अगर इसे काट दिया गया तो कई जीवों का जीवन खतरे में पड़ने की संभावना है। इसके उपरांत खुदगरज़ी एवं लालच से प्रेरित होकर मानव इन अजैविक संसाधनों को नष्ट कर देता है। वे अपनी निजी हितों की पूर्ती के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। दूसरी ओर घोंसलों की कमी के कारण पक्षियों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। लेकिन मूर्ख मानव यह नहीं सोचते कि वे अपने अस्तित्व पर ही तलवार चला रहे हैं। क्योंकि सभी प्राणियों का जीवन एक ही जीवचक्र से बंधा हुआ है। यदि उसमें कोई बाधा आती है तो उसका असर सभी पर सामान रूप से पड़ेगा । इन सभी समस्याओं से अवगत होते हुए भी मानव मजबूरन प्रकृति पर आक्रमण करता रहता है।

कवि यहाँ अपनी लेखनी के माध्यम से जनता को सचेत रहना चाहती हैं। वे पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व पर ज़ोर देने की पक्ष में है, क्योंकि कवि ने अपने बचपन में प्रकृति की गोद में बैठकर बिताया था। उन्हें प्रकृति से गहरा प्रेम है। इस प्रकार की विशेष लेखन शैली के कारण कवि ने पहले ही पाठकों से गहरा संबंध स्थापित कर लिया था। प्रस्तुत कविता में कवि अंतिम इच्छा के रूप में यों लिखते हैं - "लिखता हूँ अंतिम इच्छाओं में/कि बिजली के दाहघर में हो मेरा संस्कार / ताकि मेरे बाद/एक बेटे और बेटी के साथ/एक वृक्ष भी बचा रहे संसार में"[2]

इन पंक्तियों में कवि और प्रकृति का अटूट संबंध स्पष्ट दिखाई देता है। उनका मानना है कि पेड़ इस पारिस्थितिक तंत्र के सुचारू संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परन्तु आज मानव इन सब तथ्यों से परिचित होते हुए भी उसने अज्ञानता का मुखौटा पहन रखा है। यहां कवि ने आधुनिकीकरण के अंधत्व में फंसे मानव समूह की आँखें खोलने का अथक प्रयास किया है। सक्सेना जी की खासियत यह है कि वे अपनी काव्य रचनाओं में जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, उनके गहरे अर्थ होते हैं। यह पाठकों के मन में नई सोच के बीज बोने में सहायक सिद्ध होते हैं। वह आधुनिक जन समूह के खोखलेपन पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। इस कविता में कवि ने अपनी अंतिम इच्छा व्यक्त की है कि उनका अंतिम संस्कार किसी बिजली के दाहघर में किया जाए, क्योंकि वह पेड़ों को अपने से अलग नहीं मानते। सक्सेना जी ने एक बार कहा था कि बांसुरी में बांस नहीं बजता, सांस नहीं बजती, बजाने वाला बजता है। लेकिन इसमें राग किसी भी प्रकार का हो, इसमें कीड़ों की भूख और बांसों की चीख भी सुनी जा सकती है। असल में यहीं कवि का मन है। उनकी अभिलाषा यह है कि हर व्यक्ति पेड़ों को अपने बच्चों की तरह पालें और इस धरती को भविष्य में आनेवाली आपदाओं से बचाएँ।

संदर्भ ग्रन्थः

1. समुद्र पर हो रही है बारिश - नरेश सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ:35
2. वही, पृ:35

शोध छात्र
कालिकट विश्वविद्यालय

स्त्री स्वत्व के विभिन्न आयाम - अनामिका की कविता

डॉ विजयकुमार ए आर

कविता में प्रवेश करने के बाद हर शब्द मनुष्यता पर लगे घाव, आघात, दर्द, संघर्ष आदि को नापने लगते हैं। जितने लोग उन शब्दों को पढ़ते हैं उतना ही अनुभूति का विस्तार भी होता है। हर छोटी-छोटी कविता पढ़ने के बाद पाठक असमंजस में पड़ जाते हैं कि दर्द और संघर्ष कितने प्रकार के होते हैं। विज्ञान, तकनीकी, राजनीति, आर्थिक व्यवस्था आदि अनेक क्षेत्रों में हमने तेजी से विकास किया है। लेकिन कई क्षेत्रों में, जैसे स्त्रियों का मौन पीड़ा, स्वानुभूति आदि कम मुखर हुई है। अपना मत खुलकर प्रकट करने और तेजी से विनिमय करने के लिए अवसर की कमी नहीं है। औरतों की दुनिया में नई समझ और खुली चिन्ता और विचार विमर्श अब भी सीमित है। जब कि एक नागरिक के विकास के लिए सभी प्रकार के साधन यहाँ उपलब्ध है और विज्ञान तकनीकी शिक्षा सब पुरुष सत्ता के संचालन के उपकरण बने है। कला और संस्कृति भी इसी तरह उपकरण बन गया है। उपकरण हमेशा नया रूप लेकर आते हैं और पुराने वस्तुओं भावों और विचारों को हटाते रहते हैं। पुराने जगह, वस्तु, संबंध, उससे जुड़े हुए अनेक यथार्थ मिथक और भाषा अपने अर्थ खो बैठे हैं। सारे के सारे प्रतीक सत्ता के अनुकूल है या समझौता किए हुए हैं। इतिहास को सत्ता के अनुकूल परिवर्तित किया जा रहा है। आजकल लोग बदले हुए इतिहास को पढ़ते हैं। सही इतिहास जानने के लिए कोई मार्ग नहीं है। खोई हुई परंपरा को साथ लेकर चलने के लिए इतिहास पर नजर रखना अनिवार्य है। लेकिन हमारी नजरों के सामने जो इतिहास है वह कृत्रिम है या पुरुष सत्ता के इशारे पर लिखित छूट है। इसमें स्त्री स्वत्व को खोजना आसान कार्य नहीं है। अथवा छूटे इतिहास में संवेदना को खोजना जटिल प्रक्रिया है। लेकिन नारी स्वत्व अथवा महिलाओं का आत्मसम्मान और अधिकार, एक महत्वपूर्ण विषय है जो सदियों से कवियों और लेखकों ने अपने लेखन का विषय बनाया है। भारतीय साहित्य में नारी के संघर्ष, उसकी शक्ति और उसकी आत्मनिर्भरता को चित्रित करने वाली कविताएँ एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। "स्वाधीनता मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा है। स्त्री की स्वाधीनता का एक क्षेत्र साहित्य भी है। उसमें वह आत्माभिव्यक्तिके माध्यम से अपनी अस्मिता की पहचान करती है और स्वतंत्रता की व्यंजना भी करती है। स्त्री लेखन आज की कविता का एक मुख्य स्वर है। कविता में स्त्री होने की विडंबना के बीचों बीच स्वाभिमान और स्वाधीनता की महत्ता को समझने और अर्जित करने का संघर्ष पूर्ण स्वप्न भी मौजूद है। स्त्री लेखन अपनी मूल स्थापना और अंतिम लक्ष्य में पितृ सत्तात्मक व्यवस्था की शिनाख्त कर साहित्य और समाजशास्त्र दोनों जगह स्थान बनता है। यह पारंपरिक माइंड सेट से लड़ने की कोशिश में परंपरा और माइंडसेट दोनों की ताकत को एक ठोस सामाजिक मानसिक सच्चाई और चुनौती के रूप में सतह पर लाता है।"[1] जिस कविता के शब्द मनुष्यता के आंतरिक परतों में गूंज उठते हैं वे इतिहास की आलोचना करते हैं। इस तरह की कविताओं की चर्चा करना वास्तव में समय की मांग है। स्त्री पक्ष की चर्चा करते हुए अनामिका जी ने लिखा है- "इतिहास के सुधार आंदोलन/ स्त्री की दशा को निवेदित थे/ और सुधारना किसे था?/ यह कौन कहे?"[2] समकालीन हिंदी साहित्य में अनामिका मूलतः मानवीय संवेदनाओं की कवयित्री है हमारी मनोदशा का वास्तविक और सीधा चित्रण उनकी कविता की विशेषता है। उनका जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर में हुआ था। कविता के क्षेत्र में उन्हें अनेक पुरस्कार मिले हैं। जैसे राजभाषा परिषद पुरस्कार, साहित्य सम्मान, भारत भूषण अग्रवाल एवं केदार सम्मान आदि। अनामिका परिवेश और जीवन के निकट अनुभवों से भाव ग्रहण करती है और उनमें हमेशा एक सीधा और सरल जीवन दर्शन भी मौजूद है।

आधुनिक काल में महिलाओं का सम्मान करने वाले लोग टीवी चैनल, सिनेमा और सोशल मीडिया के छोटे-छोटे दृश्यों में हमेशा दिखाई देते हैं। उनमें यही सूचना दिया जाता है कि वे भी स्त्रियों की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। लेकिन आजकल की मीडिया एक विशेष प्रभाव जमाने के लिए हमेशा तैयार खड़ी है। क्योंकि किसी विशेष

घटना के पीछे मुख्य धारा के लोग भागते रहते हैं। वास्तव में यह कुछ लोगों को धोका देने का उपक्रम है। ऐसी अवस्था में लोगों की सहज प्रतिक्रिया नष्ट होने लगती है। पूरा समाज लक्ष्यहीन भटकने लगते हैं। जब अपने विचार क्षेत्र में कोई विशेष दर्शन नहीं है तब इतिहास के कई गंभीर मुद्दे उपेक्षित रह जाते है। बाहरी रूप से सब व्यस्त है लेकिन भीतर ही भीतर खोया हुआ है, अतः शून्य है। नए जमाने की कविता और कथाओं में इस तरह के समाज का चित्र मिलते हैं। कविता हमेशा अनदेखी भावभूमि की ओर चलने के लिए आतुर रहती है। अनामिका की कविताएँ इसी कोटी की है उनमें सृजन की आकांक्षा है। अपनी शक्तिऔर ऊर्जा दूसरी दुनिया की शक्ति और ऊर्जा के साथ बहने लगती है। "स्त्री समाज एक ऐसा समाज है, जो वर्ग, नस्ल,राष्ट्र आदि संकुचित सीमाओं के पार जाता है। और जहाँ कहीं दमन है- चाहे जिस वर्ग, जिस नस्ल, जिस आयु, जिस जाति की स्त्री त्रस्त है -उसको अंकवार लेता है। बूढ़े-बच्चे-अपंग-विस्थापित और अल्पसंख्यक भी मुख्यतः स्त्री ही है यह मानता है।"[3] जब सुनिश्चित बौद्धिक धारणाएँ रास्ता भटक कर अपने में व्यस्त और सीमित रह जाता है तब अनेकायामी सृजनात्मक शक्ति सबल हो उठती है। वास्तव में यह स्त्री के नए भावुक जीवन पद्धति के प्रति जागरूकता ही है। नई नारी की अनेकायामी अस्थिर और प्रयोगशील चेतना को उपयुक्तघोषित करने के लिए अनामिका की कविताएँ अवसर देती हैं।

अनामिका की कविताओं का मूल स्वर या दर्शन स्त्री चेतना है। लेकिन जब स्त्री चेतना की व्याख्या करते हैं तब उसकी परिधि में स्वतंत्रता की चरम स्थिति से लेकर चेतना की विविधता भी आती है। चेतना अपनी अनेकता को समेटे हुए स्वतंत्रता की चरम स्थिति की ओर यात्रा कर रही है। गन्ध, स्पर्श, दर्शन, स्वाद आदि सभी प्रकार के अनुभव के लिए शायद अध्येता काव्य पढ़ते रहेंगे। अनेकरूपी अनुभवों को बार-बार पढ़ने के बाद संवेदनशीलता के नए आयाम खुलते रहते हैं। केवल नारी मुक्तिया पुरुष के साथ समता का आख्यान प्रस्तुत करने से हमारे जीवन के गहन अर्थ या रुचि भेद की अभिव्यक्ति सफल नहीं हो पाती है। स्थापित जीवन मूल्यों को बदलने के लिए सांस्कृतिक विमर्श के उपकरणों को पहचानना अनिवार्य है। इनमें मुख्य है नई मीडिया। स्त्री से संबंधित सारा पाठ परिवार यौन शोषण, फैशन, सौंदर्य आदि के इर्द गिर्द घूमते हैं। लेकिन कई आलोचकों ने एक स्वतंत्र विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि हमेशा नई सोच की प्रेरणा देना ही उचित है - "अपने मूल में नारी वाद एक विचारधारा से कहीं आगे जाकर एक स्त्री द्वारा अपने और दुनिया के बारे में अलग तरह से सोने का ऐसा तरीका है जो स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए मात्र पुरुषों की बनाई परंपरा के समांतर नया सोने और रचना की नई राहें खोलता है।"[4] भूमंडलीकरण, पर्यावरण विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी, स्त्री विमर्श, सांप्रदायिकता आतंकवाद आदि अनेक विषयों को समेटे हुए समकालीन साहित्य समाज में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। हमारी पितृ सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था और नारी विमर्श साहित्य के क्षेत्र में हमेशा बाद विवाद का विषय रहा है। स्त्री स्वत्व के विभिन्न पक्षों को लेकर अधिकांश चर्चाएँ कविता में होती हैं। घर और घर बाहर की दुनिया में द्वन्द्व इस विषय पर अधिक है।

एक जमाने में लोग यही विचार रखते थे कि स्त्री-स्वातंत्र्य घर में सीमित विषय है उसे घर में ही सीमित रहने देना उचित है। लेकिन यह तथ्य हमारे सामने है कि देश की आजादी की समस्या कभी भी देश के भीतर सीमित नहीं रही है। पुरुषों द्वारा संचालित व्यवस्था और उनके संग्राम देश की सीमाएँ लांघकर बाहर चले जाते हैं। बल्कि नारी मुक्ति संबंधी स्वर घर के भीतर दब गए। शोषक-शोषित के संबंध की चर्चा मुखरित होती रही और नारी शोषण की चर्चा एक अलग धारा के रूप में बहने लगी। जो कभी-कभी दिनों दिन क्षीण होती गई। अनामिका जी की कविता 'स्त्रियाँ' इसकी चर्चा करती है "पढ़ा गया हम को/ जैसा पढ़ा जाता है कागज़/ बच्चों की फटी कापियों का/ चना जोर गरम के लिफाफे बनाने के पहले देखा गया हमको/ जैसे कि कुफ्त हो उनींदे/ देखी जाती है कलाई घड़ी/ अलसुबह अलार्म बजने के बाद।"[5] पुरुष केन्द्रित वाद विवाद बड़ी-बड़ी सभाओं में गूंजते रहते हैं। समाज में कभी-कभी अपमानित स्त्री का स्वर सुनाई पड़ता है। तब पुरुष कृष्ण का वेश धारण करता है और रक्षक या अवतार बनता है। फिर पहले की तरह अपनी मस्त दुनिया में डूब जाता है। स्त्री देह और स्वत्व को अनेक प्रकार की उपाधियों से अलंकृत रखे गए

हैं। स्त्री स्वत्व के कई परतों को अनामिका ने 'मौसियाँ' कविता में चित्रित किया है। यहां स्त्री संपूर्ण जीवन की सक्रिय सहभागी है लेकिन घरेलू संबंधों से निष्कासित होने की विडंबना है, लोक-संस्कृति और परंपरा से खदेड़ दिया गया है। "बीस्वीं शती की कूड़ा गाड़ी/ लेती गई खेत से कोड़कर अपने/ जीवन की कुछ जरूरी चीजें-/ जैसे मौसीपन,बुआपन, चाची पंथी,/ अम्मा गिरी मग्न सारे भुवन की।"[6] आजकल की मीडिया भी स्त्री की पवित्रता पर गंभीर विचार प्रस्तुत करते हैं। गाँव-गाँव शहरों में सिनेमा और सीरियल का प्रदर्शन हो रहा है। उसमें स्त्रियों के चरित्र पर विशेष व्याख्यान चलते हैं। एक विचार विष की तरह फैल गया है कि स्त्री का चरित्र इतना नाजुक है और वह किसी तिजोरी में बंद रहना या पवित्र जगहों पर सुरक्षित रखना ही उचित है। शोषण और उत्पीड़न का प्रतीक बनने के लिए कुछ स्त्रियों का जीवन समर्पित है। ये वास्तव में प्रतिनिधि हैं। इन सीढ़ियों पर कदम रखते हुए छोटे-छोटे नेता और रक्षक आगे बढ़ते हैं। सत्ता के उच्च शिखर पर पहुँचने के बाद शोषित और उत्पीड़ित नारियों का दबा स्वर नहीं सुनते हैं। सत्ता की दुनिया में आदेश और निर्देश चलते हैं। अनामिका की कविताओं के प्रतीक और भाव भूमि सहज और साधारण जीवन परिवेश की उपज है। गाँव के बिंबों और प्रतीकों में सत्ता की जटिलता कम और मानवीयता की लचीलापन अधिक है। कई प्रतीकों में उन्होंने आत्मनिर्भर स्त्री की छाया को चित्रित की है। हमारी व्यवस्था में कई प्रकार के अंतर विरोध मिलते हैं। यद्यपि हम परंपरागत धारणाओं को बदलते हुए आगे बढ़ते हैं। फिर भी सांस्कृतिक नैतिकता और आदर्श को सुरक्षित रखते भी है। घर परिवार से संबन्धित मिथकों का उपयोग करते हुए उन्होंने अधिकार संबंधी समस्या पर लिखी है। इतिहास में स्त्री की उपस्थिति क्या है और उसके स्वरूप का निर्धारण किस हद तक अनिवार्य है? यह एक गंभीर विचार है। 'बेजगह' कविता की पंक्तियाँ इसके लिए उदाहरण है "अपनी जगह से गिरकर / कहीं के नहीं रहते/ केश, औरतें और नाखून-/ अन्वय करते थे किसी श्लोक का ऐसे/ हमारा संस्कृत टीचर/ और हम मारे डर के जम जाती थी/ हम लड़कियां। अपनी जगह पर।"[7] कई स्त्रियाँ अपनी जगह पर रहने के लिए मजबूर है। और कोई गलत जगह पर घुट रही है। हमारी संस्कृति और लंबे इतिहास इसके प्रति ध्यान नहीं देते हैं। वे पुरुष द्वारा संचालित व्यवस्था के समुचित विकास के लिए अपने शासन के उपकरणों का भलीभांति उपयोग कैसे करें? इसपर विचार कर रहे हैं। इस व्यवस्था के भीतर स्त्री बार -बार मरती है या फिर शुतुरमुर्ग की तरह जीवन बितानी पड़ती है। - "तब से उन्हें आने लगी शरम सी/ रोज़ रोज़ मरने में एक बार शर्माती, लेकिन फिर कुछ सोचकर/ मर ही जाती/मरती हुई सोचती,/चिड़िया ही होना था तो शुतुरमुर्ग क्यों हुई मैं/ सूंघनी ही थी तो कोई नाक मुझे सूंघती - /यह क्या कि सूंघा तो सांप/ और कुछ दिन बीते तो किसी ने उनको पढ़ाई/ गान्धी जी की जीवनी, सत्याग्रह का कुछ ऐसा प्रभाव हुआ,/ बेवजह पिटने के प्रतिकार में वे/ लंबे लंबे अनशन रखने लगी।/ चार पांच सात शाम घटती वे निराहार/ कि कोई आकर मना लें,/फिर एक रात/ गिन्न-गिन्न नाचता माथा/ पकड़े-पकड़े जा पहुँचती वे चौके तक/ और धीरे धीरे खुद काढ़कर/ खाती बासी रोटियाँ/ थोड़ा सा लेकर उधार नमक आंखों का।"[8] इतिहास के महान पुरुषों की कहानी सुनकर स्त्रियों के मन में कभी हीनता बोध पनपने लगते हैं। घर अंग्रेजी राज की तरह था। पति देव वहाँ शासक थे। घर के हर शब्द, हर छोटी-छोटी वस्तुएँ मानो सत्ता के चिह्न थे। बहादुरों के मशहूर वचन और नारे हमेशा कानों में गूंजते हैं। ऐसा वातावरण स्वाभाविक रूप से सजीव होता है, कि स्त्री अपने आप को शुतुरमुर्ग की तरह छिपाने लगती है। पतिव्रता अपने जीवन का नक्शा बदलने के लिए कोई आवाज सुनना चाहती है। लेकिन वह पतिव्रता है, उसकी दुनिया पति है सिर्फ मुक्ति के सपने देख सकती है। जब बाहर से कोई आवाज नहीं आती है, तो भीतर ही भीतर बरसता है जैसे रेत के ऊपर पानी की बूंदें गिरती हैं। स्त्री समाज प्राचीन काल से अपनी अस्मिता स्वत्व और स्वतंत्रता को लेकर असुरक्षित महसूस करता आया है। अनामिका जी की कविताओं में स्त्री स्वत्व के कई परतों के जीवंत चित्र देख सकते हैं। स्त्री के अपने लंबे जीवन में विस्थापन और पलायन की कहानी हैं। शहरों और गांव में समस्या का रूप अलग है। वे लंबी लोक-संस्कृति के समांतर चलती है। अनामिका की कविताएँ स्त्री समाज में वैचारिक क्रांति का संचार करती हैं। ये कविताएँ स्त्री स्वत्व के विभिन्न सवालों के साथ खड़ी है और उनमें निहित संघर्ष को समझती है। कविता के हर शब्द पढ़ते पढ़ते अनुभूति का विस्तार अवश्य होता है।

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'बदनाम बस्ती' फिल्म किस उपन्यास के आधार पर बनाया गया?
2. 'वाङ्चू' किसकी प्रसिद्ध कहानी है?
3. 'लोग हैं लागि कबित्त बनावत' किसने कहा?
4. 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के संस्थापक कौन हैं?
5. दक्षिणी उर्दू की लिपि क्या है?
6. अवधी भाषा का उद्भव किससे माना जाता है?
7. शिवसिंह सेंगर के इतिहास का नाम क्या है?
8. भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख किसमें मिलता है?
9. 'एक नाम शरण धर्म' के संस्थापक कौन है?
10. 'गोसाई चरित' किसकी रचना है?
11. 'आलसियों का कोडा' किसकी रचना है?
12. परीक्षा गुरु उपन्यास का नायक कौन है?
13. 'वे दिन वे लोग' किसकी संस्मरणात्मक रचना है?
14. वात्सल्य को रस की संज्ञा किसने दी?
15. व्यक्तिविवेक नामक ग्रंथ के रचयिता कौन है?
16. 'महादेवी की रचना प्रक्रिया' किसकी आलोचनात्मक रचना है?
17. 'संपत्ति शास्त्र' नामक ग्रंथ के रचयिता कौन है?
18. 'प्रस्तुत प्रश्न' किसका निबंध है?
19. 'उलझी आकृतियाँ' किसका नाटक है?
20. अधिकार खोकर बैठे रहना यह महादुष्कर्म है - पंक्ति किस कविता की है?

उत्तर: पृष्ठ 52

सन्दर्भ सूचना

1. रोहिणी अग्रवाल: स्त्री लेखन स्वप्न और संकल्प, पृ 6
2. अनामिका: टोकरी में दिगंत थेरी गाथा, पृ- 60
3. अनामिका: स्त्री विमर्श का लोकपक्ष,पृ- 23
4. राजेन्द्र यादव, अर्चना शर्मा : अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, पृ 281
5. अनामिका: स्त्रियाँ (कविता) : hindisamay. com
6. अनामिका: मौसियाँ (कविता): https:// www.hindwi.org-kavita
7. अनामिका: बेजगह (कविता): hindisamay.com
8. अनामिका: पतिव्रता (कविता): hindisamay.com

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य - राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, 2018
2. आलोचना का स्त्री पक्ष, पद्धति, परम्परा और पाठ - सुजाता , राजकमल प्रकाशन, 2021
3. स्त्री कविता: पक्ष और परिप्रेक्ष्य (भाग एक)- रेखा सेठी, राजकमल प्रकाशन 2019
4. स्त्री विमर्श का लोकपक्ष-अनामिका, वाणी प्रकाशन 2023
5. स्त्री लेखन-स्वप्न और संकल्प- रोहिणी अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन 2011
6. गलत पते की चिट्ठी-अनामिका, बिहार ग्रन्थ कुटीर, पटना।
7. टोकरी में दिगंत - अनामिका, राजकमल प्रकाशन 2014
8. पानी को सब याद था - अनामिका, राजकमल प्रकाशन
9. अब भी वसंत को तुम्हारी जरूरत है: अनामिका, साहित्य अकादमी,नई दिल्ली 2004
10. Hindisamay.com https://wwwhindisamay.com
11. https://wwwhindwi.org.kavita

हिन्दी विभाग
सेंट मेरीस कालेज, सुल्तान बत्तेरी।

पुराण के अनमोल स्त्री रत्न और पवन करण - स्त्री शतक में स्त्री विमर्श

डॉ इन्दु के वी

"अपनी कथाओं में आखिर /कितनी स्त्रियों का वध करेंगे आप/कथाओं में बाधित स्त्रियाँ/जिस दिन खुद को बांचना/शुरू कर देंगी, कथाएँ बांचना/ छोड़ देंगी तुम्हारी"[1]

स्त्री की परम्परागत छवि से अलग एक नए रूप या पहचान के निर्माण को स्त्री विमर्श कहता है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज द्वारा निर्मित रूढी परम्पराओं से स्त्री की मुक्ति की आवाज़ बुलंद करना इसका लक्ष्य है। स्त्री विमर्श सिद्धांत के पीछे पुरुष सत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों और अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि है। स्त्रियाँ भी एक व्यक्तिबनकर समाज के केंद्र में आना चाहती है। स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना, शोषण और उत्पीडन के विरोध में संघर्ष करना, स्त्रियों से संबंधित विभिन्न समस्याओं पर विचार करना, स्त्री को अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान करवाना, स्त्रियों के साथ होनेवाले मानसिक और शारीरिक शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाना और उसे मानसिक रूप से सुदृढ़ बनाना आदि स्त्री विमर्श का प्रमुख लक्ष्य है। स्त्री विमर्श के सारे तत्व पवन करण की स्त्री शतक काव्य संग्रह की कविताओं में सहज रूप में आ गए है।

स्त्री शतक की हर एक कविता स्त्री के प्रति नई समझ विकसित करने की कोशिश करती नजर आती है। पुराणों में अतीन्द्रिय शक्तिवाले वीर राजाओं का वर्णन हैं, उनकी अर्धांगिनियाँ भी हैं जिनके सौन्दर्य वर्णन कभी कभी कवि को असाध्य लगते हैं उन्हें शब्दों की कमी पड़ते है लेकिन उन स्त्रियों के अहसास कहीं नहीं होते। उनकी प्रतिक्रियाएँ नहीं होतीं। क्योंकि सब जानते हैं कि स्त्री की प्रतिक्रियाएँ यदि वक्तपर समझ ली गईं होती तो दुनिया का इतिहास वह नहीं होता जो आज है। प्राचीन काल से स्त्री शरीर पर लिखनेवाले उसके मन पर अब तक नहीं पहुँच पाई है। स्त्री शतक के जरिए पवन करण अनुभूती की इन सच्चाईयों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। रामायण में सीता को वधू की शिक्षा देते समय भरत मुनि की पत्नी अनसूया ने उपदेश दिया था- "दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्तित?/ स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पति।"[2]

अर्थात पति बुरे स्वभाव का, कामी अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाव वाली नारियों के लिए श्रेष्ठ देवता के समान है। लेकिन इन देवों के लिए स्त्री का क्या महत्व है सीता माँ की कहानी स्वयं उसका साक्ष्य है। परीक्षा केवल स्त्रियों के लिए ही होता है। राजा भद्रायु की पत्नी कीर्तिमालिनी साक्षात् उमादेवी से प्रश्न पूछ रही है - "उमा अब आप ही मुझे बताएँ/ परिक्षा लेने के लिए देव/ स्त्री-देह ही क्यों चुनते हैं/ यह तो सरासर देह-लोलुपता है / जिसमें उनका साथ देने आप भी चली आती है"[3]

सती की सखी विजया भी इसी बात को लेकर सती से प्रश्न कर रही है कि शंका तो केवल पुरुषों के लिए ही होता है? स्त्री को इसका हक़ नहीं है- "स्त्री के लिए संदेह वर्जित है/ फिर वह चाहे जगदम्बा ही क्यों न हो/ मन ही मन विजया बुदबुदाती/ पुरुष चाहे देव हो या गण मान लेना चाहिए उसका कहा/ अन्यथा पुरुष पर शंका/ उसका सुख हर लेगी, झोंक देगी जीते जी उसे आग में"[4]

शिव पत्नी को शक्तिरूपा माना जाता है। शक्तिरूपा होते हुए भी सती की स्थिति ऐसी है तो साधारण स्त्री के बारे में क्या कहें- "मगर इस बात पर/ घोर आश्चर्य भी होता है मुझे/ कि शक्तिरूपा होते हुए भी/ तुमने स्वीकार लिया सब/ तब मुझ सरीखी तुम्हारी शक्तिहीना सखियों की/ इस पुरुष जगत में क्या बिसात"[5]

इसी बात को लेकर मोर्वी भी चिंतित है। मोर्वी घटोत्कच की पत्नी है। मोर्वी नामक कविता में वह कहती है- "एक स्त्री के पास उसे लेकर/ पुरुष के मन में उमड़नेवाली/ सभी जिज्ञासाओं के समाधान होते हैं/ मगर तुम्हारी तरह उसके भी पास/ स्त्री को अपने बारे में सोचने देने की उदारता नहीं होती"[6] तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्री सिर्फ एक वस्तु है, संपत्ति है, सम्भोग और संतान की पूर्ती करनेवाली एक भोगवस्तु। राजा बलि की पत्नी विन्ध्यावली के शब्दों में - "स्त्री का कोई भाग नहीं होता कहीं/सब

पुरुष-भाग होता है /राजपाट हो या यज्ञ भाग/ यदि बलि ने मुझे भी/रखा होता अपने निर्णय में याद/तो वामन अवतार नहीं होता इतना आसान/विष्णु को करना पड़ता सामना मेरा भी"[7]

ब्रह्मा की अप्सराएँ भी पुरुष वर्चस्व के शिकार है। अप्सराएँ प्रेम करने के लिए नहीं, प्रेम प्रकट करने के लिए होती हैं। उनके शरीर घर की तरह नहीं होती हैं सराय की तरह है। माँ बनने के लिए नहीं बच्चे जनने के लिए होती हैं उनकी कोखें। ऐसा लगता है किसी ने पीठ उघाड़ पुरुषों को महिमा मंडित करते तमाम किस्सों पर कोड़े बरसा दिए हैं। यह स्त्री रूपा होकर भी एक स्त्री के गर्भ से जन्म न ले पाने की पीड़ा है जो उन्हें स्त्री के भीतर बांधे रखती है संकोच से। अप्सराएँ तो पुरुष के वर्चस्व को कायम रखने के लिए अपना प्रेम प्रकट करते हैं। सामाजिक नियम कहते है एक स्त्री अपना प्रेम प्रकट करना अत्यन्त निंदनीय बात है।

स्त्रियों की वफादारी व धर्म परायणता अपने मालिक के प्रति जान न्योछावर करना ही है। यही उनका स्त्रीत्व है और यही शील। इंद्र की पुत्री जयंति कहती है.. देवताओं को स्त्रियां तब तक ही प्रिय हैं, जब तक वे उनकी अनुगता हैं, कामिनी हैं, पैर दबाती लक्ष्मी सी आज्ञाकारिणी और ऋषि-तपस्या भंग करतीं मेनकाएँ हैं। 'स्त्रीशतक' की 'कौशिकी'(सरस्वती) कविता में शिवपत्नी पार्वती से महादेव के लिए नष्ट किये उनके अस्तित्व पर सवाल खड़ा करते हुए कौशिकी पूछती है कि वह क्यों शम्भु के विनोद का जवाब नहीं दे पाईं। क्यों नहीं कह पाईं कि महादेव, विनोद में ही सही, आप मुझे काली कहकर संसार की असंख्य स्त्रियों को प्रताड़ित कर रहे हैं। मगर आप तो शिव कथन से इतनी भयभीत हो गईं कि आपने अपनी सांवली त्वचा ही उतार फेंकी मेरे रूप में। आपने सोचा नहीं कि वस्त्र की तरह अपनी सांवली त्वचा उतारकर आपके अलावा संसार की कोई स्त्री कभी भी गौरी नहीं हो सकेगी। ये ठीक नहीं हुआ कि काया के पक्ष में अडिग रहने के स्थान पर कायांतरण का मार्ग चुना आपने। आज भी काली काया के नाम पर कितनी स्त्रियाँ अपमानित हो रही हैं। इस कविता में स्त्री की वेदना, दुख, पीड़ा, संत्रास, अपमान, उपेक्षा, ग्लानि, हताशा ही सामने नहीं आती बल्कि उसका मन चीत्कार कर उठता है जब उसे अहसास होता है कि स्त्रियों की दुस्थिति के लिए पुरुष ही नहीं स्त्री भी किसी हद तक उतनी ही दोषी है। पुरुष को संप्रीत करने के लिए वे अपने अस्तित्व को ही न्योछावर करते है।

पिता के लिए कभी पति के लिए स्त्री को अपने पसंदों को त्यागना पड़ता है। कभी समाज में पति के अस्तित्व को कायम रखने के लिए उसे अपना शरीर दूसरों को सौंपना पड़ती है। राजा महाबली की पत्नी है सुदेषणा। 'सुदेषणा' कविता की पंक्तियाँ- "और जब वह उसके पास अपनी कोखों में/ वीर्यदान ग्रहण करने आयीं राजस्त्रियों की/ रूप-सत्ता को पराजित कर रहा होता/ राजा बलि जैसे कई समर्थ/ इस ऋषि के दरवाजे के बाहर खड़े/ अपनी रानियों के बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे होते।[8]

सुदेषणा यहाँ वीर्य ग्रहण करने के लिए दीर्घतमा मामतेय नामक ऋषि के पास जाती है। दीर्घतमा मामतेय ऋग्वेद के दूसरे महत्वपूर्ण जन्मांध ऋषि है जिन्होंने एक नए देवता की कल्पना और 'एक सत्त विप्रा बहुधा वदन्ति' (सत्य एक है अनेक रूपों में बोले जाते है) नामक ग्रन्थ की रचना की। वह ममता के पुत्र है जिन्होंने वीर्यदान को ही अपना पेशा बना लिया था।

स्त्रीशातक की कविताओं के ज़रिये कवि पवन करण ने अनगिनत अप्रधान स्त्री पात्रों के विविध रूप को पाठकों के सम्मुख रख लिया जिनमें प्रतिरोध करनेवाली स्त्रियों की भी कमी नहीं हैं। इंद्र की पत्नी शची का उल्लेख दो तीन कविताओं में मिलता है। विश्वाची अप्सरा से कवि कहता है- "राजमुकुट धारी बाज में तुम/अपनी देह बचाने की खातिर/शचि की तरह लड़ना।"[9]

इंद्र की पत्नी शचि जिसने देवताओं के आग्रह के बावजूद इन्द्रासन पर सवार नहुष की अंकशायिनी बनने से इनकार कर दिया था। शची की पुत्री जयन्ती से भी कवि कहता है- "जयंती, बूढ़े शुक्र की अंकशायिनी होने से पहले/ तुमने खुद के बारे में नहीं सोचा/ तुम्हें पिता की बात मानने से पहले/ माँ शचि एक बार भी याद नहीं आई/ नहुष से खुद को बचाने में सफल शचि तुम्हें पितृ आज्ञा न मानने की सलाह देती।"[10]

जयन्ती इंद्र और शचि की पुत्री जिसे उसने बलि से धरती हथियाने के लिए शुक्र को सौंप दिया दिया था।

अधिकाँश साहित्यिक रचनाओं में और फिल्मों में आज भी प्रेम की बात पहले पुरुष द्वारा स्त्री से बताना सही मानते है्र एक स्त्री अपनी मन की बात खुलकर बताना उनका नाक कटवाना समझ जाता है्र कैकसी की पुत्री वज्रामणी(शूर्पनखा) के साथ भी यही हुआ था। लेकिन अपने मन की बात खुलकर बताने में वह हिचकती नहीं- "उसके प्रेम में बैरों में बेड़ियाँ पहनाने की/कोशिश करनेवाले सुझावों से कहे/ नहीं मैं इसे नहीं बांधूंगा/ दूंगा इसे इच्छानुसार बहने"[11]

किसी को पुत्रवान बनाने के लिए अब वह किसी की पत्नी बनने के लिए भी तैयार नहीं। घुश्मा नामक कविता की पंक्तियाँ- "नहीं तुम्हें पुत्रवान बनाने के लिए/ मैं तुम्हारी दूसरी पत्नी बनने को तैयार नहीं कतई"[12]

एक चक्र की प्रेयसी मालिनी भी मय के वार्षिक विक्रयोत्सव में रैक्व ऋषि द्वारा स्वर्ण के बदले उसके खरीदे जाने को मानने से इनकार करते हुए कहती है - "तुमने भले ही अपने विलासभवन की/ सौन्दर्यभामियों के लिए गढ़ा नियम/ रैक्व के सामने रख, उसे हताश कर दिया हो/ मगर मेरा अप्रतिम रूपाभिमान उसे/ मानने को तैयार नहीं एकचक्र"[13]

मय के वार्षिकोत्सव में मालिनी तो प्रतिरोध कर सकी। लेकिन कितनी स्त्रियों को वहाँ एक उपभोग वस्तु के रूप में विक्रय किया होगा। क्या ऐसा ज़माना आयेगा कि हर स्त्री को कम से कम अपने शरीर में अधिकार होगा।

निष्कर्ष : संक्षेप में कह सकते है कि स्त्री शतक की कविताओं में स्त्री के विविध रूप और भाव के दर्शन होते है। भारतीय परम्परा में फंसी स्त्री को पुराणों से उठाकर आधुनिक परिवेश में निष्पक्ष दृष्टी से रखने का उनका प्रयास अत्यंत सराहनीय है जो पठकों को सोचने के लिए मजबूर करते है। पुरुष वर्चस्ववादी सामाजिक ढाँचे में विभिन्न प्रकार के शोषण सहकर, उसे अपनी नियति समझकर जीनेवाली अनेक स्त्रियाँ आज भी हमारे समाज में हैं। पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री को एक उपभोगवस्तु के रूप में ही देखना चाहते हैं। नारी की सबसे बड़ी समस्या उसका शरीर है। उसे संस्कृति की प्रहरी बनाकर उस शरीर को शुद्ध रखना सबसे बड़ा मूल्य माना जाता है। पुरुष केन्द्रित समाज अपनी सुविधा और अपनी शर्तों पर तैयार किये नैतिक मूल्य एवं आध्यात्मिक मूल्यों की नियमावलियों को पालन करने का दायित्व स्त्री पर निर्भर है। ये बिलकुल स्त्रियों के खिलाफ है और उनके शोषण का हथियार है। आज स्त्रियाँ इस षड्यंत्र को पहचानने लगी हैं। लेकिन केवल स्त्री की मानसिकता में बदलाव आने से कुछ नहीं होगा। इसके लिए सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य है। आशा करती हूँ कि आगामी पीढी इस दर्द को समझ सकें।

"एक स्त्री के लिए स्त्री होना/ हर काल में होता है कठिन/उसके लेखे में तो हमेशा कुर्री पक्षी की भांति/रुदन करना ही होता है बदा"[14]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. पवन करण (2019), धुन्धुली, स्त्री शतक(प्रथम खंड),भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ. सं-171
2. वाल्मीकी रामायण, अयोध्याकाण्ड-116,24,29
3. पवन करण (2019), कीर्तिमालीनी, स्त्री शतक(प्रथम खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.51
4. पवन करण (2019), विजया, स्त्री शतक(प्रथम खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.58,59
5. पवन करण (2019), विजया, स्त्री शतक(प्रथम खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.58,59
6. पवन करण (2019), मोर्वी, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.132,133
7. पवन करण (2019),विन्ध्यावली, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ सं.199
8. पवन करण(2019), सुदेषणा, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.30,31
9. पवन करण (2019), सुलोचना, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,स्त्रीशतक(प्रथम खंड) पृ सं-42,43
10. पवन करण (2019), जयन्ती, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.24.25
11. पवन करण (2019), वज्रामणी, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.36,37
12. पवन करण (2019), घुश्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली स्त्रीशतक(प्रथम खंड) पृ सं.175
13. पवन करण (2019), मालिनी, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.22,23
14. पवन करण (2019), कयाधू, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.202

असोसियेट प्रोफसर
हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय

वैश्वीकरण और समकालीन कविता

डॉ मिनी ए आर

15वीं सदी में ग्लोबलाइजेशन की शुरुआत हुई है। विश्व की अर्थव्यवस्थाओं और संस्कृतियों का मेल ग्लोबलाइजेशन है। वैश्वीकरण अचानक नहीं आया है। वैश्वीकरण शुद्ध पूंजीवादी अवधारणा है। भूमंडलीकरण अमेरिकी लूट और पूंजीवाद के साम्राज्य की स्थापना का नाम है। भूमंडलीकरण में वसुधैव कुटुंबकम् की व्यापक भावना भी समाहित है। ।व्यक्तिसमाज की एक छोटी सी इकाई है। अर्थात व्यक्ति से समाज बनता है। पूंजीवादी व्यवस्था अब भूमंडलीकरण के नये चेहरे पहनकर संपूर्ण विश्व में फैलाती है। "भूमडलीकरण एक ऐसी भौगोलिक सामाजिक आर्थिक एवं सास्कृतिक प्रक्रिया है , जिसमें औद्योगिक चालक की भूमिका अदा करती है ,तथा रंगमच के केंद्र में बाज़ार होता है, और राज्य की भूमिका नगण्य कर दी जाती है।"[1]

आधुनिक युग नव इलेक्ट्रॉनिक युग है। कंप्यूटर इंटरनेट ईमेल आदि के माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांति आई है। समस्त विश्व तो एक गांव में बदल गया। क्रांतिकारी परिवर्तन के साथ मीडिया संचार साहित्य सभी विधाओं में बदलाव आ गये। मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन आ गये। जीवन का मुख्य आधार अर्थ हो गया। बाजारीकरण का गहरा प्रभाव चारों ओर फैल गए। कला, संस्कृति, साहित्य सब कुछ बाजार के लिए बिकाउ वस्तु बन गये। संस्कृति और सभ्यता में भी परिवर्तन आ गये। आधुनिकता को छोडकर संपूर्ण मानव उत्तराधुनिकता को स्वीकार करने में व्यस्त हो गए।

उत्तराधुनिकता का प्रभाव हिन्दी कविता में भी झलकने लगा। परिवेश से साहित्य भी प्रभावित होता है। मन के अनुभूतिजन्य उदगारों का शाब्दिक विस्फोड तो कविता है। चारों ओर से प्रेरणा पाकर प्रभावित होकर सृजनात्मक विधा का आरंभ होता है। प्रत्येक युग की अपनी दृष्टि एवं सृष्टि होती हैं। साहित्य की विधाओं में से अत्यन्त प्राचीन एवं लोकप्रिय विधा है कविता। आचार्य शमचन्द्र शुक्ल के अनुसार- "कविता मनुष्य को, कवि को, पाठक को भी आत्मकेन्द्रता निज बद्धता से मुक्त करती हैं। समग्र सृष्टि की ओर उन्मुख करती हैं, और यदि नही करती तो वह काहे की कविता है।"[2] कविता का मूल तो उसकी आत्मानुभूति है। आदि काव्य तो उसी प्रकार बनती थी। क्रौंच वध पर विषादमय होकर वात्मीकी की आह चीत्कार से आदिकाव्य का जन्म भी हुआ है। वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान। इसी मानवीय मनोदशा की अभिव्यंजना तो कविता का उद्गम स्थल बनी।

"मा निषाद प्रतिष्ठा त्वगम : शाश्वति समाः /यत क्रौंच मिथुना देकमवधी काम मोहितम।"[3]

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु से लेकर अब तक अनेक प्रमुख कवियों ने हिन्दी कविता को संपन्न किया है। आज 21 सदी में अर्थात वैश्वीकरण के इस युग में हम पूरी तरह आर्थिक और मानसिक रूप से पूरी तरह गुलामी की ओर बढ रहे हैं। 'अपनी संस्कृति की पहचान हम नहीं करते। कुमार कृष्ण की हिमालय कविता की पक्तियों में वैश्वीकरण के खतरे के प्रति सचेतन होने का आह्वान देती है। पंक्तियाँ देखिए : गन्ने की तरह गेठदार /अमरूद की तरह अनगिनत बीज वाली/लिखो तुम कविताएँ बेशुमार/वर्णमाला के अक्षरो में/अ से ज्ञ तक बचा ले लो। मेरे दोस्त/घरती की मिठास।

आज के मशीनी युग में मानवीय संवेदनाएँ सिसकती हुई एवं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ धधकती हुई दिखाई दे रही हैं। गोस्वामी की कविता घमंड में - "मेरी महानता के सम्मुख/ न टिके घरती का कोई जीव/ मेरे अहसास से काँपने लगे धरती का/कण कण/ महाकाल को खूँट से बाँधनेवाला/ मैं धमण्ड हूँ।"[4]

मानव स्वयं अपने को धमंडी का विशेषण देते हैं। वह - धमंडी है, अहंकारी हैं। वह कहता है कि उसके अहसास से सारी धरती के कण कण काँपते रहते हैं। वे अपने आप को महान समझते हैं। वैश्वीकरण की समस्या ने विश्व की संस्कृति को बचाना चाहा और वैश्वीकरण

की नीति को अपनाकर सरकार और रचनाओं ने अपने साहित्य और संस्कृति को बचाना चाहा है। केवल चाह मात्र वही बेच भी रहे हैं।

"आज मानवता की कब्र पर /नैतिकता का मुर्दा जलेगा।/ मित्र तुम भी आना/चार कविता सुनाना/ चालीस तालियाँ ले जाना"[5]

बाजार में अब आम आदमी का कोई स्थान नहीं। पूंजीवादी व्यवस्था का प्रभाव मात्र देख सकते हैं। पूंजीवादी ही समाज मे जन को विभक्त करते हैं। सभी इसके प्रति अलग-अलग लड़ाई कर रहे हैं। लेकिन एक साथ नहीं।अरुण कमल की कविता में कवि का मन इस तरह की पूजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश से भर उठता है। वह आम जनता के पक्षधर होकर इस पूंजीवादी के प्रति विद्रोह उठाते हैं।

प्रकृति का स्थान औद्योगिकरण ने लिया है। मनुष्य भी आज इन पूंजीवादियों के पैरों तले रौंदा जा रहा है। "धुआंधार अग्नि बाणों की वर्षा से/काल सा वसंत दिशाओं को। /चिपडी चिपडी किए दे जा रहा हैं।/बाज़ारवाद वैश्वीकरण की नींव हैं।"[6] भूमण्डलीकरण का यह भयावह रूप आम आदमी को लाचार बनाते हैं। विश्व ग्राम भी अपने आप मे समेटे हुए हैं। महानगरों में पीडा की त्रासदी का अहसास होता है। एकान्त श्रीवास्तव का बाजार से टकराने का अन्दाजा 'दुनिया के हार में' कविता में वे कहते हैं कि "मैं जमीन नहीं बेचता, बेचता हूँ ऑखे जल आ स्वप्न से भीगा अपनी दो आँखें।"[7] यहाँ बाजारवाद को अपने भीगे नयनों से चुनौती दे रहे हैं। हमें यह स्पष्ट हुआ कि बाज़ारवाद समकालीन कविता और मनुष्य के लिए एक चुनौती है। इन संकटों को दूर करने के लिए समकालीन हिन्दी कविता अपनी क्षमता दिखाती हैं। बाजारवाद वैश्वीकरण आदि आधी दौड में शामिल इस संसार को इससे बिछुडन पाने के लिए समकालीन कविता प्रयत्न कर रही हैं। वह निडरता और साहस के साथ संघर्ष करके विजय की ओर आगे बढ रही हैं। समकालीन कविता विजय यात्रा करती जा रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. डॉ. सवेशकुमार खरे का आलेख जुलाई सितंबर - 2010 शोधार्णव पृ. 6
2. डॉ. सन्ध्या नलगुंडवार - आजकी हिन्दी कविता -आसन्न संकट एवं चुनौतियाँ - पृं- 93
3. श्रीमद् वात्मीकीरामायण प्रथम सर्ग-(1,2 , 15)
4. केवल गोस्वामी - घमंड पृं- 100
5. अनन्नभटनागर - चार कविताएँ-नवंबर 2005 - पृं-37
6. असुर बसंत (कविता संग्रह) शुक्रतारा 2006' भारतीय ज्ञानपीठ . नईदिल्ली
7. एकान्त श्रीवास्तव - दुनिया के हार में - पृं-38

असिस्टेंट प्रोफसर, पय्यनूर कॉलेज
पथ्यनुर, कण्णूर, केरला

उत्तर

1. एक सड़क सत्तावन गलियाँ
2. भीष्म साहनी
3. घनानंद
4. पुरुषोत्तमदास टंडन
5. फारसी
6. अर्धमागधी अपभ्रंश
7. शिवसिंह 'सरोज'
8. श्वेताश्वेतर उपनिषद
9. शंकरदेव
10. बेनी माधवदास
11. राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद
12. मदन मोहन
13. शिवपूजन सहाय
14. विश्वनाथ
15. महिमभट्ट
16. कृष्णदत्त पालीवाल
17. महावीर प्रसाद द्विवेदी
18. जैनेंद्र
19. हमीदुल्ला
20. जयद्रथवध

अल्मा कबूतरी - स्त्री संघर्ष की एक अलग कहानी

अंजू ई एम

आधुनिक समाज और साहित्य का एक अभिन्न अंग है 'स्त्री विमर्श'। किसी खास बिंदु को सम्यक दृष्टि से चिंतन - मनन , सोच - विचार या परीक्षण - निरीक्षण करने को हम विमर्श कहते हैं। साहित्य में 'स्त्री विमर्श' का संबंध समाज की पितृसत्तात्मक नीतियों के खिलाफ आवाज़ उठाकर स्त्री सत्ता की तलाश करने से है। इक्कीस्वीं सदी के हिंदी साहित्य ने स्त्री विमर्श को अपना एक प्रमुख मुद्दा मान लिया है। कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति और परंपरा स्त्री को हमेशा आदर सम्मान की दृष्टि से देखने की कोशिश करती है ।लेकिन जब हम स्थिति को गौर से परख ले तो जानेंगे कि समाज को परिवार को... परंपरा को .. आगे बढ़ाने वाली स्त्री माँ, देवी आदि अनेक नामों से अभिहित होने पर भी दूसरे दर्जे की ज़िंदगी जीने के लिए विवश है। देवी कहकर मंदिरों में उसकी पूजा होती है, आदर्श ग्रन्थों पर उसकी गाथा अंकित हो जाती है, लेकिन वास्तविक तौर पर उसकी ज़िंदगी कांटों से भरी रहती है। एक ओर उसके आदर्श रूप का चित्रण होता है तो दूसरी ओर उसके सर्वांग शोषण करने का षड्यंत्र रचा जाता है। उसके लिए अलग कानून ,अलग रीति -रिवाज, अलग समय यहाँ तक कि अलग भाषा का भी प्रयोग होता है ।इस तरह स्त्री को दोहरी दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति पुरातन काल से देख सकती है। सीमोन बोंउवा के अनुसार -"पुरुष जान बूझकर स्त्री को बौना रखता है । स्त्री ना देवी है ना राक्षसी, वह मानवी है जिसे समाज की फूहड़ प्रथाओं नों ने दासता में जकड़ कर रख दिया।"[1] यह तो सच है कि आज स्त्री की स्थिति में बदलाव आ गया है। लेकिन इसका मतलब यही नहीं है कि उसको न्याय मिल रहा है। यह तो आशा वह है कि आधुनिक साहित्य स्त्री के आदर्शात्मक रूप को छोड़कर उसके वास्तविक परिवेश और पिंजरे में बंद उसकी आत्मा को खोलने की कोशिश कर रहा है। निर्मल वर्मा के अनुसार "नारी अपने अधिकारों की इच्छा करें, अधिकारी भी बने, अधिकारी के इच्छुक व्यक्तिको अधिकारी भी होना चाहिए। अर्थात इच्छा पूर्ण करने के लिए कृति की आवश्यकता होना जरूरी है"[2] आज की स्त्री मंदिर में पूजा के लिए चुपचाप खड़ी किसी मूर्ति या सब कुछ सहने के बाध्य धर्ती माँ बनने के लिए तैयार नहीं है। ज़रूर वह आज भी शोषण ग्रस्त है। लेकिन उसके प्रति आवाज उड़ाने के लिए सोचने तक की क्षमता प्राप्त की है। समाज के नाम पर.. संस्कृति के नाम पर.. परिवार के नाम पर केवल स्त्री के उपर थोपे जानेवाले विशेष बंधनों को उसने पहचानना शुरू की है। मंजू रस्तोगी के अनुसार "जब सामाजिक व्यवस्था व्यक्तित्व को दबाने का प्रयास करती है , तब व्यवस्था में विद्रोह होता है और नई व्यवस्था उभरने लगती है।"[3] यह विद्रोह की भावना से उत्पन्न आत्म पहचान आज की स्त्रियों की जिंदगी में एक प्रकार के नवजागरण की स्थिति पैदा करती है।

आधुनिक हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण नाम है' मैत्रेयी पुष्पा'। स्त्री विमर्श के संदर्भ की किसी भी चर्चा या लेख उनके बिना अपूर्ण है। समकालीन हिंदी कथा साहित्य में वे पहली लेखिका है जो ग्रामीण परिवेश से जुड़े स्त्री जीवन की संपूर्ण समस्याओं को हमारे सामने उसकी पूर्ण गहराई के साथ प्रस्तुत करती हैं। 1944 में अलीगढ़ के सिकुर्रा गाँव में जन्मी लेखिका ने बुंदेलखण्ड के वातावरण को अपनी आत्मा मे समाया है। स्त्री क्या है , उसकी आशा - आकांक्षा क्या है, उसके साथ क्या हो रहा है.. सभी का यथार्थ चित्रण बिना कोई पर्दा के हमारे सम्मुख मैत्रेयी जी रखती हैं। मैत्रेयी जी के सभी स्त्री - पात्र पाठकों के मन में विशोषकर स्त्रियों के मन में मुक्ति के बीज बोती हैं। कुछ करने की लालसा पैदा करती है। उनमें कपट धार्मिकता नही है.. अंधी ममता नही है.. प्रबल है एक जिजिविषा, सशक्त है अपनी आत्मा की पुकार .. वो जन्दिगी जीते या हारे .. लेकिन बिना लड़े नहीं।

मैत्रेयी पुष्पा जी द्वारा लिखित सन 2000 में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास स्त्री विमर्श का एक नया और खुला दृष्टिकोण हमारे

सम्मुख प्रस्तुत करता है। उपन्यास के प्रमुख स्त्री पात्र कदमबाई हो या अल्मा या उन दोनों की तुलना में कम प्रसंग में आने वाली भूरी, पाठकों को स्तब्ध कराकर हमारे समाज के सामने स्त्री के मन की दबी हुई उन सभी आकांक्षाओं को पूर्ण सच्चाई के साथ बेहिचक होकर पर्दाफाश करती हैं।

समाज की हाशियेकृत जातियों में एक कबूतर जनजाति को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है 'अल्मा कबूतरी'। उपन्यास का प्रारंभ 'मड़ोरा खुर्द ' नामक गांव के कबूतरा जनजाति की स्त्री कदमबाई से होता है। उसके रू प सौंदर्य पर आकर्षित होकर 'कज्जा' वर्ग के मंसाराम उसको अपनाने के लिए उसके पति जंगलिया का उपयोग करते हैं। जंगलिया के नाम पर कदमबाई को धोखा देकर अपनाते हैं। कदमबाई मंसाराम से गर्भवती हो जाती है। बाद में मंसाराम जंगलिया को मारते हैं। सब कुछ जानकार भी कदमबाई मंसाराम के बच्चे को जन्म देती है। 'राणा ' नाम से पालती है ।मंसाराम राणा के प्रति अपने दिल में ममता रखते हैं। कदमबाई राणा को एक कबूतरी की तरह निर्मम बनाना चाहती है। लेकिन उनकी रुचि पढ़ाई की ओर थी। इसलिए पढ़ा लिखा कबूतरा रामसिंह मास्टर राणा को अपने साथ ले जाते हैं। रामसिंह की माँ भूरी अपने शरीर को बेचकर अपने बेटे को पढ़ाती थी। पढ़ा - लिखा मास्टर अपनी बेटी को भी पढ़ाता है । मास्टर अपनी बेटी अल्मा का हाथ राणा को सौंपना चाहता था। राणा और अल्मा के बीच तन - मन का रिश्ता बढ़ता है। लेकिन एक दिन राणा को रामसिंह मास्टर की कुछ ऐसे करतूतों की खबर मिलती है जो उन्हें कताई असह्य था। वह अल्मा के लाख मनाने के बाद भी वापस मडोरा खुर्द जाता है। इसी बीच रामसिंह की हत्या कर दी जाती है और अल्मा सूरजभान जो पहले एक डाकू थे और अब राजनेता उसके हाथ में फँस जाती है। अल्मा सूरजभान की कैद से बचकर उनके विरोधी समाज कल्याण मंत्री श्री राम शास्त्री के पास पहुँच जाती है। अल्मा बड़ी चतुराई से श्री राम शास्त्री के पास पहुँच जाती है। अल्मा बडी चतुराई से श्री राम शास्त्री के करीब आती है और राजनीति के सभी चालों को अपने वश में कर लेती है। वह धीरे-धीरे शास्त्री जी के लिए सब कुछ बन जाती है और शास्त्री जी की पत्नी का वेश धारण कर लेती है। विरोधी नेताओं द्वारा शास्त्री जी की हत्या होती है। अल्मा इस परिस्थिति की भी बड़ी कुशलता से सामना करती है वह विधवा का वेश धारण करती है। सभी नियमों को तोड़कर शास्त्री जी के देह को मुखाग्नि देती है। बड़ी उथल - पुथल मच जाती है। उपन्यास का अंत अगले दिन के अखबार में आई इस खबर से होती है कि रिक्तस्थान की उम्मीदवार है श्रीमती अल्माशास्त्री।

'अल्मा कबूतरी' के स्त्री पात्र विशेष कर अल्मा, कदमबाई और भूरी परंपरा के मूल्यों को तोड़ने वाली है। उनमें आसीम धैर्य का आवेग है। सही गलत की खुद की मान्यताएँ हैं। मन और तन के प्रति अपनी रुचि है। समाज से मिली सभी प्रताड़नाओं से वे हारते नहीं बल्कि लड़ते रहते हैं। तन - मन पर हुए अत्याचारों को आगे चलने का ईंधन बनती है। उपन्यास में हम देखते हैं कि कदमबाई तो एक खूबसूरत कबूतरी थी। कदमबाई के रूप सौंदर्य को अपनाने में कज्जा मंसाराम सफल होते हैं। कदमबाई जंगलिया के स्थान पर मंसाराम को स्वीकारती है। उसके बच्चे को कोख में लेती है । शायद कदमबाई के मन में कज्जा पुरुष के प्रति और उनके सादगी के प्रति मोह हुआ होगा। एक से यह स्वीकृति उसके मन की इच्छाओं के प्रति पल भर के लिए न्याय थी।अपने हक के बारे में सचेत एक आधुनिक नारी की सोच इस उल्लंघन में हम देख सकते हैं। लेकिन पति की हत्या के बारे में जानकर कदमबाई का वह भावावेश समाप्त होता है। कदमबाई पति की हत्या का प्रतिशोध मंसाराम के बच्चे को गिराकर नहीं, बल्कि जन्म देकर जताना चाहती है । वह कहती है "राणा माथे पर कबूतरा की चिप्पी चिपकाए कितना दुख पाता है मंसाराम की तुम कट कर रह जाओगे।"[4] राणा को कबूतरा बनाने की लाख कोशिश करती है कदमबाई । वह अपरिष्कृत और अनपढ़ होने पर भी एक स्वाभिमानी स्त्री है। मंसाराम के बच्चे को जन्म देकर भी वह कहती है कि "उनके बच्चे की माँ बनी थी ,भिखारिन नहीं बनी कि पालन पोषण का मुआवजा मांगती और माँ के हक को छोटा करती।"[5] जब

उसको पता चलता है कि राणा को कबूतरा बनाकर मंसाराम के पितृत्व के सामने प्रश्न चिह्न लगाने की ख्वाहिश एक व्यामोह थी,क्योंकि राणा में कबूतरों की नहीं बल्कि कज्जा वर्ग का चरित्र प्रबल है.. तो वह उसको भी स्वीकारती है। शराब की ठेका बस्ती में खुलने पर वह उसको भी अपने अनुकूल बनाती है। समय की गति के अनुसार वह अपने जिंदगी को बदलती रहती है।

'अल्मा' कबूतरा जाति के मास्टर रामसिंह की बेटी है। रामसिंह के पिता पुलिस के हाथों मारा गया था। उसकी माँ भूरी चाहती थी कि किसी भी कीमत पर अपने बेटे को पढाए। वह अपनी देह बेचकर पुत्र को पढ़ने के लिए कमाती थी। भूरी को भी यह नहीं लगता कि वह कोई अपराध करती है। उसके सामने उसका लक्ष्य ही प्रमुख है, मार्ग नहीं। अल्मा शब्द का अर्थ है 'आत्मा'। अल्मा के चरित्र से गुज़रने पर हम देखते हैं कि अल्मा एक ऐसा पात्र है जो प्रस्तुत उपन्यास के भूरी , कदमबाई दोनों पात्रों के क्रमगत विकास भी है। अल्मा जाती से कबूतरी होने पर भी पढ़ी लिखी है। सभ्य लोगों के साथ उनकी ज़िंदगी जीती है। उपन्यास में हम देखते हैं कि उसमें कई प्रकार के द्वन्द चल रहे हैं। अल्मा के पत्र के बारे में नीरा नाहटा लिखती है "अल्मा का क्रमिक विकास भूरी से प्रारंभ होकर जिंदगी से जूझती हुई कदमबाई की रूपकृति के बाद का अध्ययन रूप है।"[6] भूरी और कदमबाई की जिजिविषा और जिंदगी की लालसा अल्मा में प्रकट है। अपने प्रेमी राणा को वह उन्मुक्तहोकर स्वीकारती है। लेकिन जब राणा अल्मा के पिता से विमुख होकर वापस चल चला जाता है तो वह अपने पिता का साथ देती है। कई बार उसके साथ अत्याचार होता है। कई बार उसका बलात्कार होता है। लेकिन तन और मन पर पड़े अत्याचार को अल्मा आत्मा पर आने नहीं देती। जो शरीर शिकार बन गया था उसको ही वह हथियार बनाती है। राणा को मन में रखते ही वह पाप भर से मुक्त होकर ज़िंदगी को आगे बढ़ाने के लिए देह और बुद्धि का उपयोग करती है। पहले जिन लोगों ने उसके शरीर को अपनाने के लिए अन्याय किया था, अब अल्मा उस शरीर का उपयोग करके अपने लिए इंसाफ हड़प लेती है। समाज कल्याण मंत्री श्री राम शास्त्री के लिए सब कुछ बनकर वह राजनीति में प्रवेश करती है। उसकी मृत्यु के बाद उसकी विधवा बनकर उसकी देह को मुखाग्नि देकर समाज को चौंका देती है और अपने नाम की प्रतिष्ठा करती है। यह असीम धैर्य ही उसे शास्त्री जी के रिक्तस्थान की हकदार बनती है। समाज और संस्कृति द्वारा स्त्री शरीर को दी गई सभी सीमाएं वह पर करती है, और अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करती है।

हम जानते हैं कि भारत की बहुत स्त्रियाँ किसी न किसी प्रकार के शोषण के शिकार हैं। किसी न किसी के अत्याचार द्वारा जिंदगी में तड़पने के लिए विवश है। लेकिन मैत्रेयी जी ने प्रस्तुत उपन्यास के स्त्री पात्रों के ज़रिए असामान्य एवं अनुपम मिसाल प्रस्तुत की है। भूरी पत्र से शुरू होकर कदमबाई से विकसित होकर अल्मा तक पहुँचने वाली स्त्री संघर्ष की गाथा सदियों से प्रताड़ित, शोषित, उपेक्षित कबूतरे वर्ग की एक स्त्री बनकर.. अपने सर्वशक्तिसंभालकर समाज के सम्मुख अपने अस्तित्व की उद्घोषणा कर रही है। सत्ता के शिखर तक पहुँच कर समाज को चेतावनी दे रही है।

संदर्भग्रन्थ सूची

1. सीमान बोडवा - द सेंकड सेक्स राजकमल प्रकाशन दिल्ली -2003 प्रष्ठ संख्या 301
2. निर्मल वर्मा - महादेवी एक मूल्यांकन - लोकभारती प्रकाशन - 1969 प्रष्ठ संख्या 208
3. मंजू रस्तेगी अनामिका का काव्य-प्रष्ठ संख्या- 11
4. मैत्रेयी पुष्पा - अल्मा कबूतरी - प्रष्ठ संख्या - 37
5. मैत्रेयी पुष्पा -अल्मा कबूतरी - 44
6. नीरा नाहटा -दस्तावेज 92 - जूलाई सितंबर - पृष्ठ संख्या 42

शोध निदेशक : डॉ. शैलजा के

शोध छात्र

महाराजास कॉलेज, एरनाकुलम

आत्मकथा

देवयानम्

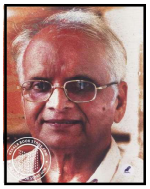

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

तेरहवाँ देवपद-विश्वविद्यालय में

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

साहित्य के बड़े मनीषी लोग इस उत्सव में भाग लेते हुए भाषण देते थे। इनमें प्रमुख थे - डॉ के भास्करन नायर, श्री कुट्टिकृष्ण मारार, कैनिक्करा कुमार पिल्लै, श्री एन वी कृष्ण वारियर, श्री एन पी मन्मथन इत्यादि। गुरु श्री चंद्रशेखर एवं श्रीमती ललिता गोपालन नायर जैसे वरिष्ठ कलाकारों ने अपनी वरिष्ठ कलाओं से इस काव्योत्सव को धन्य एवं सफल कर दिए थे। इस कविता समिति का दूसरा महत्वपूर्ण साहित्यिक लक्ष्य था कि हर साल की श्रेष्ठ एवं उत्तम कविताओं का संकलन और उनका प्रकाशन करना। मलयालम काव्य-क्षेत्र में चिर प्रतिष्ठित महान कवयित्री श्रीमती बालामणियम्मा तक की रचयिताओं की कविताएँ समाहृत कर उनका प्रकाशन किया गया था। इस प्रकार कविता समिति ने पच्चीस साल के ऊपर मलयालम भाषा-साहित्य की उज्ज्वल सेवा की थी। समय बीतने पर समिति के अंगों के निधन और पुस्तक प्रकाशक कोट्टयम के "साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ" का सर्वनाश - इन दोनों कारणों से काव्योत्सव भी रुक गया। खेद की बात है कि समिति के अंगों में से अब केवल मैं ही बाकी रह गया हूँ; अन्य सब लोगों ने इहलोक से बिदा ले ली।

स्वामी विवेकानंद की जन्म-शती पर उनके नाम पर कोई स्मृति-मंदिर बनाया जाय। श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानंद के शिष्यों ने अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयत्न शुरू किए थे। केरल सरकार ने विश्वविद्यालय की ज़मीन का कुछ अंश (50 cent) उन्हें दिया और; वहाँ विवेकानंद सेन्टिनरी मेम्मोरियल इन्स्टिट्यूट की स्थापना हुई थी। श्रीमती लक्ष्मी एन मेनोन उस संस्था की प्रथम अध्यक्षा थी। मैं तो उपसचिव था। बाद में पंद्रह साल तक मैं उसका सचिव भी बना था। उस अवसर पर श्रीरामकृष्ण एवं विवेकानंद के उपदेश और संदेशों का प्रचार-प्रसार, भगवद्गीता तथा उपनिषदों के आधार पर भाषण आदि हुआ करते थे। कुछ साल के बाद मैंने उस संस्था को छोड़ दिया।

(क्रमशः)

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी

अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

कोलत्तुनाडु से हम जो खजाना लाये थे, पूरा तिरुवितांकूर महाराजा के पैरों पर समर्पण किया और वहाँ जो हुआ, सब खुल्ल-खुल्ला बताकर हत्या होने की पृष्ठभूमि की गंभीरता समझकर माफ करने का अनुरोध भी किया। तिरुवितांकूर महाराजा ने उस अनुरोध को स्वीकार कर हमने जो खजाना समर्पण किया उसे स्वीकार किया। उसके बदले में उस समय बस्ती स्थी हरिप्पाटु में भूमि और कुट्टनाडु में पुंजा खेत लगान मुक्त करके दे दी। 'मयूरसंदेशं' की रचना करनेवाले केरलवर्मा वलिया कोयित्तंपुरान नजरबंद में रहने महल के रूप में बाद में ख्याति प्राप्त हरिप्पाटु के अनंतपुरम राज महल की देखरेख में ही महाराजा ने हमें बसाया था। अनंतपुरम राजमहल में तब योद्धा थे। मारे गए तेक्कळंकूर के अनुयायी हमें ढूँढकर आयें तो उनसे हमें बचाने की जिम्मेदारी उन योद्धाओं पर था। पुलित्तिट्टा कोयिक्कल नामक छोटे राजमहल में हमें बसाया गया था। पर हत्या करके कोराप्पुष़ा (देश की सीमा) पार करनेवालों के रूप में तत्कालीन सामूहिक नियम के अनुसार हमें 'भ्रष्ट' मान कर क्षत्रिय जाति से नायर जाति में हमें पदावनत भी कर दिया। सारा सत्य समझने वाले महाराजा ने 'तंपी' पद देकर हमें तसल्ली दी। पुलित्तिट्टा कोयिक्कल तंपी राजेंद्रन यही उनका दिया हुआ पदनाम है। 'राजेंद्रन' नामक शब्द में हमारा भूतकाल विलीन हो गया। दस्तावेज़ आदि में दर्ज करनेवाला मेरा पूरा नाम 'पुलित्तिट्टा कोयिक्कल तंपी राजेंद्रन' नामक पदनाम से युक्त पद्मनाभन तंपी श्रीकुमारन तंपी है। हरिप्पाट्टु से तात्पर्य है हरि का गान। संस्कृत में हरिगीतपुरम्। उस जमाने में वहाँ की मुख्य पाठशालाओं में संस्कृत ही सिखाई जाती थी। संस्कृत पाठशाला, हरिगीतपुरम् ऐसा लिखा गया बोर्ड बचपन में मैंने जो देखा था वह अब भी मेरे मन में है। 'शास्त्री' नामक उपाधि ही स्कूल शिक्षा के बाद मिलती है। दो मिडिल स्कूल भी इस समय हरिप्पाट्टु में थे। वहाँ मलयालम ही शिक्षा का माध्यम था। साधारण लोगों के लिए एवं पडोस के लोगों के लिए हरिगीतपुरम 'अरिप्पाट्टु' था। सुब्रह्मण्य मंदिर और मण्णारशाला नागराजा मंदिर उस समय से ही मशहूर हो गए थे। अनेक देवी मंदिर, श्रीकृष्ण मंदिर और शिव मंदिरों के स्थित हरिप्पाट्टु तब भी और अब भी मंदिरों का गाँव है। (अब तो हरिप्पाट्टु पंचायत नहीं, मुनिसिप्पालिटी है।) चिरक्कल कोविलकं में स्थित शक्तिशाली 'मरुमक्कत्तायं' हमने हरिप्पाट्टु में भी लागू किया। बहनों के सारे पुत्रों के नाम के आद्यक्षर समान रहे थे। माँ के बड़े भाई के नाम का आद्यक्षर 'पी' होने से मैं पी. श्रीकुमारन तंपी हो गया। माँ की तीन बड़ी बहनों के सारे पुत्रों के नाम का आद्यक्षर 'पी' ही है। पर मन के मेल के लिए आद्यक्षर का समान होना काफी न था।

पुलित्तिट्टा कोयिक्कल में रहते हुए मेरे पूर्वजों ने हरिप्पाट्टु सुब्रह्मण्य मंदिर के उत्तरी भाग में जो एट्टुकेट्टु बनाया था, (हवेली से दुगुना आकार)

वही 'पुन्नूर मठं' है (बंटवारे के समय आधा भाग हटाकर उस घर को हवेली बना दिया गया।) बिना देरी के कुछ रिश्तेदारों ने भी कन्नूर प्रदेश से हरिप्पाट्टु पहुँच गए। उनके रहने के लिए आधा मील दूर निर्मित हवेली को 'ऊँजाल मठ' नाम रखा। ऊँजाल मठ में रामन, केशवन आदि भाई और परिवार रहे। वे सिद्ध वैद्य एवं संस्कृत के पंडित थे। तिरुवितांकूर महाराजा को इन सिद्ध वैद्यों ने इलाज किया था, ऐसा कहा जाता है। ऊँजालमठ के पास तंपी लोगों ने एक विद्यालय की भी स्थापना की - आरूर पाठशाला। एक से चार तक के क्लास का वह विद्यालय आज भी मौजूद है। रिश्तेदारों से रुढकर मेरे विषचिकित्सक चाचाजी कुमारन तंपी ने उसे सरकार को दे दिया। अगली पीढ़ी को दे देते तो एक हयर सेकन्डरी स्कूल बनकर वह बड़ा होता।

माँ के सीधा चाचा रूपी चात्तु तंपी जब परिवार के मुख्या थे तभी पुत्तूर परिवार ऊँचायियों पर पहुँच गया था। उनकी चार बहनों में से सबसे छोटी अविवाहित रही थी। उसका एक पैर कुछ सूजा हुआ था। पर फील पाँव कहने के लिए कुछ नहीं था। दसवें साल में लडकियों का विवाह संपन्न करानेवाले परिवार में वे अविवाहित होकर रहीं। 'शायद फीलपाँव से युक्त मुझे लोग देख लेंगे तो', इस हीनता ग्रंथि के कारण ही सही उन्होंने शादी न करने का निश्चय किया होगा। बिना देरी के ही उनकी ज्येष्ठ बहन की बेटी प्रसव में ही मर गई। मरनेवाली बेटी के दोनों नन्हे बच्चों के लिए उन्होंने अपना बाकी जीवन बिताया। मुझे साक्षात् मिलने, प्यार करने और आलिंगन करने के लिए कुट्टियम्मा नाम से सब के द्वारा पुकारी जानेवाली मेरी छोटी दादी माँ द्वारा पाल-पोसकर बड़े किए गए छोटे बच्चे थे कुंञंबी नाम से पुकारे जानेवाले कुंञुरामन तंपी और बाद में हमारे पड़ोसी एवं माँ का मुख्य पारिवारिक शत्रु बनी पोन्नम्मा तंकच्ची।

मेरी अपनी दादी माँ रूपी कुञ्ञुकुट्टि तंकच्ची को साक्षात् देखने या उनका वात्सल्य अनुभव करने का भाग्य नहीं मिला। मेरे जन्म होने के ठीक दस दिन पहले दादी माँ मर गयीं। मैं जब नटखट करता था तो माँ इस मृत्यु का कारण भी मेरे सिर पर मढ़ देती थीं। "तेरे छोटी पैर न देखने के लिए ही मेरी माँ पहले ही चल बसी थी। तेरा इस भूमि पर पधारने के दस दिन पहले ही माँ मर गई थी।" इसका मतलब है धरती में उतने से पहले से ही मैंने अपनी माँ की माता की हत्या की। डेढ-डेढ साल और पाँच साल के बीच में मेरे बाद जन्मे डेढ साल की उम्र के अंतर के तीन छोटे भाइयों को भी मैंने मारा। असल में कहूँ तो उनमें से दो की मृत्यु में मेरी भी भागीदारी है। माँ जब पेरुंकुळं में नहाने जाती थी तब मुझे भी ले जाती थी। माँ जब डुबकी लेकर नहा रही होती तब बिना माँ की जानकारी के मैं पानी में उतर जाता था। इस तरह दो बार मैं पेरुंकुळं में डूबकर मरनेवाला था। दोनों बार माँ कूदकर एवं तैरती हुई मुझे बचा लेती थीं। तब दोनों बार माँ पूर्ण गर्भवती थी। निकट के दिनों में ही माँ ने जन्म दिया और बच्चे मर भी गए। इस प्रकार से पाँच वर्ष की आयु में ही मुझे अपनी ही माँ से 'हत्यारा' नामक उपाधि मिली। शरारतें करते समय मुझे इस तरह शाप देने पर भी मैं जब अकेला बैठकर सिसकियाँ भरकर रोता था तब माँ मेरे बैठने के स्थान पर दौड़ती आकर मेरा आलिंगन करके "मेरा लाडला.... माँ ने दुखी होने पर कहा था, आ जा, उठो.... माँ नारियल धज्जा कर चीनी मिलाकर दूँगी।".... ऐसा कहकर मुझे रसोई घर में ले जायेंगी।

(क्रमशः)

सभा में आयोजित हिंदी प्रचारक सम्मेलन एवं नवीकरण पाठ्यक्रम में सभा के मंत्री भाषण दे रहे हैं।

नवीकरण पाठ्यक्रम में डॉ.वेल्लिमण नेल्सन और श्री. एस. गोपकुमार सिखा रहे हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा के आलंगाड् हिंदी महा विद्यालय का वार्षिकोत्सव।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-02-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

FEBRUARY 2025

Vol. No. 61, Issue No.11
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam